श्राविका धर्म दर्पण

सुरेन्द्र कुमार जैन

सूरजभान वकील

मूल्य ।)

श्राविका धर्म दर्पण

लेखकः—

समाज सेवी फ़ख्रे क़ौम, बाबू सूरजभान वकील
नकुड़ जिला सहारनपुर निवासी

प्रकाशकः—

कुलवन्तराय [illegible] ओवरसियर

मूल्य—स्व पाठ

कुटुम्ब और समाज के सुख-शान्ति के हेतु नारियों में धार्मिकता की नितान्त आवश्यकता है। मनु महाराज ने कहा है—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'

नारियों को सुशिक्षित, सुधार्मिक और सन्मान्य बनाना सब सुखों का मूल है।

प्रस्तुत पुस्तक में जैनियों के धर्माचरणों का वर्णन किया गया है और उसका नारियां किस प्रकार पालन कर सकती हैं यह सरलता पूर्वक भली भांति समझाया गया है। इसमें आत्म-संयम और आत्म-विकास दोनों प्रकार के नियमों का विवेचन मिलेगा, जिनके पालन करने से प्रत्येक सद्‌गृहिणी अपना जीवन सुखी और सफल बना सकती है तथा अपने कुटुम्ब और समाज का भी भारी उपकार कर सकती है। पुस्तक में वर्णित दो तीन बातों का मैं यहां कुछ स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक समझता हूं जिससे हमारी सरल-स्वभावी बहनों में कोई भ्रान्ति न होने पावे।

पुस्तक के प्रारम्भ में बतलाया गया है कि स्त्री-पर्याय किस प्रकार हीन मानी गई है और उस पर्याय से छुटकारा पाने का क्या उपाय है। इस कथन में विद्वान् लेखक का अभिप्राय केवल प्रचलित मान्यता का वर्णन करना ही है। उनका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि नारी पर्याय सचमुच ही नीच और घृणित है। पुरुष और नारी एक ही मनुष्य जाति के दो अंग हैं जो एक दूसरे के परिपूरक हैं। उनमें एक दूसरे के तिरस्कार की भावना अत्यन्त घातक है। जीवन के सुख और कल्याण के लिये यह कदापि वांछनीय नहीं है कि स्त्री अपने को पुरुष से हीन समझे या पुरुष अपने को स्त्री से उच्च। एकसी योग्यता की भावना रखने

वाले दो व्यक्तियों के बीच जैसा सहयोग व प्रेम हो सकता है वैसा विषम बुद्धि वालों में नहीं हो सकता। यह तो इतिहास से सिद्ध है कि ज्ञान में, कलाकौशल में, व शूरवीरता में स्त्री भी उतनी ही ऊँची उठ सकती है जितना पुरुष। स्त्रीपर्याय से मोक्ष हो सकता है या नहीं यह विषय स्वयं जैन समाज के भीतर विवाद-ग्रस्त है। दिगम्बर कहते हैं नहीं हो सकता, श्वेताम्बर कहते हैं हो सकता है और हुआ है। पर इस काल में तो इस विषय का कोई व्यवहारिक प्रयोजन ही नहीं है, क्योंकि सैद्धान्तिक मान्यतानुसार इस क्षेत्र से वर्तमान में कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, न स्त्री न पुरुष। अतएव स्त्री की हीनता सिद्ध करने के लिये यह प्रमाण देना निष्प्रयोजन है। आत्मा में तो स्त्री-पुरुष भेद सर्वथा है ही नहीं।

आगे चलकर लेखक ने शरीर की और गृह की स्वच्छता के सम्बंध में जो उदासीनता का उपदेश दिया है, उसका यह तात्पर्य नहीं लेना चाहिये कि गन्दगी-पसंद बनना धर्म है। कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय व्यक्ति विशेष की अवस्था पर निर्भर है। मुनि-अवस्था में शरीर की स्वच्छता की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। यह संसार से विरक्त मुनियों के लिये ठीक है। और इसके कारण उनसे घृणा करना उचित नहीं है। पर गृहस्थ का तो कर्तव्य है कि यथावसर उनके शरीर को भी स्वच्छ कर दिया करे। अपना शरीर, अपने वस्त्र तथा अपना गृह स्वच्छ रखना तो प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक कर्तव्य है। गंदगी सब रोगों का मूल है। गृहस्थी में इसे कभी सहन नहीं करना चाहिये। सद्गृहिणी वही है जो अपनी ही नहीं किन्तु सारे गृह और समस्त कुटुम्बियों की स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखे।

किन्तु स्वच्छता-प्रिय होना एक बात है और बहुमूल्य वस्त्रा-भूषणों की लालसा रखना दूसरी बात है। यह विलासिता हो जाती है जिससे प्रत्येक गृहिणी को सचेत और सावधान रहना चाहिये।

लेखक ने और आगे चलकर हिंदुओं की छुआछूत का उल्लेख और उसका तिरस्कार किया है। छुआछूत का भूत केवल हिन्दुओं में ही नहीं है, जैनियों ने तो इसमें उनका भी नम्बर ले लिया है। विचार करने से पता चलता है कि स्पृश्यास्पृश्य विचार पहले पहल स्वच्छता के लिये ही उत्पन्न हुआ था। गन्दे पदार्थों या व्यक्तियों से अपने को दूर रखना, और खाद्य पदार्थों की गन्दगी से विशेषत रक्षा करना आरोग्य शास्त्रका पहला नियम है। किन्तु वर्तमान छुआछूत की मान्यता में आरोग्य शास्त्र का विवेक नहीं रहा। वह अतिरेक पर पहुंच गया है और केवल अन्धरूढ़ि बन गया है। जैनधर्म विवेक का पक्षपाती है। उसके आचार्यों का तो यह दावा है कि—

'पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥'

अर्थात्, न तो हमें महावीर भगवान का, केवल जैन तीर्थंकर होने के कारण, कोई पक्षपात है, और न कपिल आदि मुनियों के मतों से केवल उनके अजैन होने के कारण कोई द्वेष है। हमारा तो यह कहना है कि जिसकी बात युक्तिपूर्ण हो उसका ही ग्रहण करना चाहिये' ऐसी विवेक-शीलता और ऐसी विचारों की उदारता अन्य किसी भी प्राचीन धर्म के भीतर मिलना कठिन है। बस, हमें दूसरे धर्मों की बुराइयां खोजने की अपेक्षा उनकी खूबियां समझकर ग्रहण करना चाहिये और अविवेक, अन्धविश्वास अथवा, जैन शास्त्रों के शब्दों में, मूढताओं से अपने को बचाना चाहिये।

इन चेतावनियों के साथ इस पुस्तक को अपने महिला-वर्ग के हाथ में देने में मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। इसके लेखक बड़े विद्वान् और जैन समाज के एक आदि सुधारक हैं। और इस नाते से उनके लिये हमारे हृदय में बड़ी श्रद्धा और भारी सन्मान है। हमारे सारे समाज को उनका गौरव है जिसका प्रमाण यह है कि वे समाज में 'फ़ख्रे क़ौम' के नाम से पुकारे जाते हैं। बड़ा हर्ष है कि कई वर्षों के पश्चात् अपनी दीर्घ आयु में भी उन्होंने अब पुनः लेखनी उठाई है इस 'श्राविका धर्म दर्पण' की रचना उन्होंने अपने पौत्र के विवाह में प्रचारार्थ की है, और उनके सुपुत्र, वर के पिता तथा मेरे प्रिय सुहृद् बाबू कुलवन्तराय जी की प्रेरणा से मैंने यह प्रस्तावना लिखी है। श्रद्धेय लेखक चिरायु हों और हमारे साहित्य की अधिकाधिक पुष्टि करते रहें, प्रिय मित्र कुलवन्तराय जी अपने पुत्र और पुत्रवधू सहित सुखी हों, तथा यह 'श्राविका धर्म दर्पण' हमारे नारी-समाज के जीवन में धर्म की शुद्ध ज्योति चमकाता रहे यह हमारी अन्तरतम भावना है।

किंग एडवर्ड कालेज
अमरावती, २५-२-३९

हीरालाल जैन

श्राविका धर्म दर्पण

सतीत्वेन महत्वेन वृत्तेन विनयेन च । विवेकेन स्त्रियः काश्चिद् भूषयन्ति धरातलम ॥

अर्थ—अनेक स्त्रियां अपने सतीत्व से, बड़प्पन से, चाल चलन से, विनय से, बुद्धिमानी से, पृथिवी को भूषित करती हैं। उनसे पृथिवी की शोभा होती है।

——o——

पहला अध्याय—सम्यग्दर्शन

पवित्रीक्रियतेयेन येनैवोद्धियते जगत् । नमस्तस्मै दयार्द्राय धर्म कल्पाङ्घ्रि पाय वै ॥

अर्थ—जिस धर्म के द्वारा जगत पवित्र किया जाता है, जिसके द्वारा जगत का उद्धार होता है, जो दया रूपी रस से भरा हुआ है उस धर्म रूपी कल्प वृक्ष को मैं नमस्कार करता हूं।

धर्मो व्यसन संपाते याति विश्वं चराचरम् । सुखामृत पयः पूरैः प्राणयत्यखिल जगत् ॥

अर्थ—कष्ट के आने पर धर्म ही सब जीवों की रक्षा करता है, सुख रूपी अमृत की नदियां बहाकर सारे जगत को तृप्त करता है।

धर्मो गुरुश्च मित्रश्च धर्मः स्वामी च बांधवः। अनाथ वत्सलः सोयं सत्राता कारणं विना ॥

अर्थ—धर्म ही गुरु है, धर्म ही स्वामी है, धर्म ही भाई बंद है। धर्म ही अनाथों को प्यार करने वाला है, धर्म ही बिना मतलब के इस संसार से तारने वाला है, ।

धर्म की महिमा अपरंपार है, इसकी महिमा तो कोई हज़ार जिह्वा से भी वर्णन नहीं कर सकता, तब हमारे जैसे तुच्छ मनुष्यों की तो ताक़त ही क्या है जो कुछ कह सकें, प्यारी बहिनो जो धर्म सारे जगत की सुख शान्ति का आधार है, बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा, महाराजा, इन्द्र, धरणेन्द्र भी जिसके सेवन करने से ही ऐसे ऊँचे पद को पाते हैं, अरिहंत और सिद्ध भी जिसके धारण करने से ही बनते हैं और पूजे जाते हैं, उस धर्म के स्वरूप को पहचानने, श्रद्धान करने और पालन करने की वैसे तो सब ही को ज़रूरत है परन्तु तुमको सब से ही ज़्यादा धर्म ग्रहण करने की ज़रूरत है, तुमको तो स्वयं तुम्हारी यह स्त्री पर्याय ही बहुत खटकती है, तुम्हें कमज़ोर समझकर पुरुष भी तुमपर बहुत ज़ुल्म करते हैं, कन्या के जन्म लेने पर मां बाप भी दुखी होते हैं और तिरस्कार ही करते रहते हैं पिछले ज़माने में तो ऊँची जाति के लोग कन्या पैदा होते ही गला घोंट कर मार डालते थे, पर अब सरकार अंग्रेज़ी के भय से ऐसा नहीं कर पाते हैं तौभी मरजानी, गढे में दबनी आदि बोल बोलकर अपने हृदय की भड़ांस ज़रूर निकालते रहते हैं, एक ब्याह होने पर पुरुष दूसरा विवाह करा कर स्त्री की छाती पर सौत बिठाकर उसकी ज़िन्दगी बर्बाद कर सकता है, अन्य भी चाहे जो कुकर्म पुरुष करता रहे स्त्री को तो सब चुपचाप ही झेलना पड़ता है। शास्त्रों में भी स्त्री पर्याय की दिल खोलकर और पेट भरकर ख़ूब निन्दा की गई है,

मुनिधर्म धारण करने और मोक्ष प्राप्त करने के लिये तो उनको बिल्कुल ही अयोग्य ठहरा दिया है ऐसी दशा में इस स्त्री पर्याय के छूट जाने की तड़प तुम्हारे हृदय में रहना कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं हो सकी है, जिसके लिए धर्म पालन करना, तुम्हारे लिए पुरुषों से भी बहुत ज़रूरी है, धर्म से ही यह निन्दनीय स्त्री पर्याय छूट सकती है।

प्यारी बहनो! शास्त्रों में स्त्री पर्याय की जितनी ज़्यादा बुराई की गई है, उतना ही आसान उपाय भी इस पर्याय के छूट जाने का बताया है, इस कारण इस अपनी स्त्री पर्याय से दुखी होकर वृथा तड़प करना छोड़कर तुमको तो अधिक ध्यान देकर शास्त्र में बताया हुआ वह सहज उपाय ही जान लेना और फिर उसके ही मुताबिक़ आचरण करना ज़रूरी है, जिससे स्त्री पर्याय का यह बखेड़ा ही मिट जाय और सब ही आपदा दूर हो जायँ। देखो! जैन शास्त्रों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को ही धर्म का सच्चा मार्ग बताया है, इन तीनों में भी सब से पहिले सम्यग्दर्शन का होना बहुत ज़रूरी है, शास्त्रों से अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानकर उसपर अटल विश्वास कर लेना सम्यग्दर्शन है, इस अटल विश्वास के होने पर ही शास्त्र से जानी हुई बातों का ज्ञान सम्यक् ज्ञान कहलाता है, इस ही प्रकार इस अटल विश्वास के होने पर ही परोपकार, दान और व्रत, नियम आदि सब प्रकार का धर्म साधन सम्यक् चारित्र कहलाता है, मतलब यह कि धर्म का सच्चा श्रद्धान हुये बिना जो ज्ञान है वह सब ही मिथ्या ज्ञान है और जो कुछ धर्म साधन है वह भी सब मिथ्या चारित्र है और कुछ भी कार्यकारी नहीं है।

इस कथन से यह बात अच्छी तरह समझ में आगई होगी कि किसी भी प्रकार का धर्म साधन करने से पहले सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्म का सच्चा श्रद्धान होना बहुत ही ज़रूरी है जैसा कि लिखना पढ़ना सीखने के लिये सब से पहले अ आ इ आदि अक्षरों का सीखना, अब देखो कि जैन शास्त्रों के कथन के अनुसार धर्म की इस पहली पौड़ी से ही अर्थात् सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने से ही आगे को स्त्री पर्याय का मिलना बन्द हो जाता है, अर्थात् जिसको धर्म का सच्चा श्रद्धान हो जाय उसने चाहे अभी तक कुछ भी धर्म साधन शुरू न किया हो, तो भी सिर्फ़ श्रद्धान करने से ही अगले जन्म में वह स्त्री नहीं होगी, पुरुष पर्याय ही पावेगी। स्त्री पर्याय का इससे आसान उपाय और क्या हो सकता है, यह तुमने खुद ही समझ लिया होगा कि पिछले जन्म में तुमको मिथ्यात ही श्रद्धान रहा है, तब ही तो इस जन्म में स्त्री पर्याय मिली है, सम्यक् श्रद्धान होता तो स्त्री पर्याय क्यों मिलती। अब भी अगर मिथ्यात् को छोड़कर सच्चा श्रद्धान नहीं करोगी तो अगले जन्म में भी फिर स्त्री पर्याय ही मिलेगी और जो सच्चा श्रद्धान कर लोगी तो अवश्य ही स्त्री पर्याय छूटकर पुरुष पर्याय ही प्राप्त होगी।

जैन शास्त्रों के अनुसार कर्मों के आठ भेद हैं, फिर एक एक के कई कई भेद होकर कर्मों के कुल भेद एक सौ अड़तालीस १४८ हैं, मिथ्यात्व दूर होकर सच्चा श्रद्धान हो जाने पर ही इनमें से ४२ प्रकार के कर्मों का बंधना एकदम बन्द हो जाता है, मिथ्यात्व, स्त्री, नपुंसक (हीजड़ा) एक इन्द्री, दो इन्द्री, तेइन्द्री, तिर्यंच, नरकगति, नीच गोत्र जैसे खोटे कर्म बंधने बंद हो जाते हैं। मतलब यह कि सच्चा श्रद्धानी अगले जन्म में नरक, तिर्यंच अर्थात् पशु पक्षी कीड़ा मकौड़ा और

वनस्पति आदि स्थावर नपुंसक, स्त्री, नीच कुली, बेढंगे शरीर वाला, थोड़ी आयु वाला और ग़रीब दरिद्री नहीं होता है, निश्चय करके या तो स्वर्ग में जाता है, जहां वह देव होता है, देवांगना नहीं, या मनुष्य होता है, यहां भी वह पुरुष ही होता है, स्त्री नहीं, पुरुष होकर भी ऊँचे और धनवान कुल में जन्म होगा, शरीर भी सुन्दर और सुडौल ही होगा, यह सब लाभ एक। श्रद्धान ठीक हो जाने से ही हो जाते हैं। जिसका श्रद्धान ठीक नहीं है वह चाहे कितने ही व्रत नियम पाले, पूजा पाठ करै, दान दे, तप तपै, सब व्यर्थ है। उसका कल्याण किसी तरह भी नहीं हो सकता है, जिसको यह ही मालूम नहीं है कि किधर जाना है और किस रास्ते से जाना है वह चाहे जितना भी दौड़े भागे पर वह ठिकाने पर नहीं पहुंच सकता है, बच्चे एक पल भी ठाली नहीं बैठते हैं, कुछ न कुछ करते ही रहते हैं पर कारज कुछ भी सिद्ध नहीं करते हैं, यह ही हाल उसका है जिसका श्रद्धान ठीक नहीं हुआ है और जिसका श्रद्धान ठीक होगया है वह चाहे अभी एक क़दम भी नहीं चला है तौ भी उसने सच्चा रास्ता तो जान लिया है, इस वास्ते जब चलेगा तब ही ठिकाने पर पहुंच जावेगा, इस वास्ते प्यारी बहनो धर्म का ख़याल आते ही, धर्म करने का इरादा करते ही सब से पहले तुम अपने श्रद्धान को ठीक करो, धर्म के सच्चे स्वरूप को जानकर उसको मज़बूती के साथ अपने हृदय में बिठाओ और मिथ्यात्व को हटाओ, सब ही शास्त्र सब से पहले श्रद्धान ठीक करने का ही उपदेश देते हैं, श्रद्धान के बिना जो भी धर्म किया की जाती है उसको बिलकुल ही बेकार और निरर्थक ठहराते हैं, तब तुम भी क्यों नहीं अपने श्रद्धान को ठीक करती हो, बिना श्रद्धान के नाहक़ ही क्यों व्रत नियम पालने का कष्ट उठाती हो, (१) जीव क्या है (२) अजीव क्या है (३) कर्म किस तरह

पैदा होते हैं (४) जीव के साथ उनका क्या संबंध होता है अर्थात् उनसे जीव का क्या बिगाड़ सुधार होता है (५) कर्मों का पैदा होना किस तरह रुक सकता है (६) बंधे कर्म कैसे दूर हो सकते हैं (७) कर्मों से छूट जाने पर अर्थात् मोक्ष हो जाने पर जीव की क्या दशा होती है। यह सात तंत की बातें हैं जिनके ठीक २ जानने और हृदय में मज़बूत बिठा लेने से ही सच्चा श्रद्धान होता है यह ही सात तत्व हैं, जीव, अजीव आस्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष जिनके नाम हैं, जिसमें जानने की शक्ति है वह जीव है, और ईंट पत्थर लकड़ी कपड़ा आदि जिनमें जानने की शक्ति नहीं है वे अजीव हैं, राग द्वेष करना, किसी से प्रेम करना, किसी से बैर, क्रोध, मान माया लोभ का होना, सुख दुख मानना, खुश होना या रंज करना, देव, मनुष्य तिर्यंच और नरक गति में रुलते फिरना, मरना और पैदा होना यह जीव का असली स्वभाव नहीं हैं, जीव का असली स्वभाव तो तीन लोक की सारी वस्तुओं को पूर्ण रूप से जानते हुये राग द्वेष से रहित अपने परमानन्द स्वरूप में ही मग्न रहने का है परन्तु अनादि काल से अजीव पदार्थों से इस जीव का सम्बन्ध हो रहा है, देह मिट्टी पानी आदि अजीव पदार्थों की बनी हुई है, जिसमें जीव क़ैद हो रहा है एक देह छूटती है तो दूसरी मिल जाती है, जबतक कर्मों का बंधन है तब तक यह ही सिलसिला जारी है, मन बचन काय के द्वारा शरीर के हिलने से शरीर की आत्मा अर्थात् जीव हिलता है जिससे कर्म पैदा होते हैं, मन बचन काया का यह कार्य क्रोध मान माया लोभादिक किसी प्रकार की कषाय से होता है तो वह कर्म जीव के साथ बंध कर उसमें फिर दोबारा कषायें पैदा करते रहते हैं, इस ही से जीव के ज्ञान में फ़रक़ आ जाता है भले बुरे की पहचान नहीं रहती है जिससे उसको तरह तरह के विषय कषायों में फंसकर

दुख ही दुख भोगना पड़ता है, कभी दुख कम हो जाता है तो उसको सुख मानने लग जाता है, विषय कषायों को जीतकर अपने मन को न भटकाने से, शांत परिणाम रखने से कर्मों का बंधना बन्द हो जाता है। आत्म ध्यान में लीन होने और तप करने से बंधे कर्म बिना फल दिये ही दूर हो जाते हैं जिससे जीव का असली स्वरूप प्रगट होकर केवल ज्ञान और परमानन्द प्राप्त हो जाता है यह ही मोक्ष है, यह ज्ञानानन्द सदा के लिये रहता है फिर इसमें कोई विगाड़ नहीं आ सकता है।

केवल ज्ञान परमानन्द प्राप्त हो जाने पर भी जब तक आयु पूरी नहीं होती है तब तक इस देह में ही रहना होता है उस समय वह अर्हंत कहलाते हैं और अपने केवल ज्ञान से सब बात ठीक ठीक जानकर सच्चे धर्म का जो उपदेश देते हैं, वह ही जिन वाणी कहलाती है जिसको गणधर इकट्ठी कर लेते हैं और फिर उसही के अनुसार आचार्य लोग शास्त्र बना देते हैं, अर्हंतों का देह छूट जाने पर वह मोक्ष स्थान को चले जाते हैं, जो लोक के शिखर पर है जहां वह सदा के लिये अटल एक स्वरूप में रहते हैं, वह सिद्ध कहलाते हैं। अर्हंत और सिद्ध ही सच्चे देव और पूज्य परमेश्वर हैं, जो पुरुष गृहस्थ से नाता तोड़कर विषय कषाय और राग द्वेष से मुँह मोड़ कर बस्ती से बाहर एकांत स्थान में जा, बंधे कर्मों को नाश करने और नवीन कर्मों को पैदा न होने देने के वास्ते तप और ध्यान में लीन हो जाते हैं, जेठ आसाढ़ की कड़ाके की धूप को, बरसात की मूसलाधार बारिश को, पौष माह की बरफ़ और पाले को सब अपने नंगे शरीर पर झेलते हैं, जंगल के डांस मच्छर कीड़े मकौड़े पशु पक्षी सब ही अनेक प्रकार का दुख पहुँचाते हैं, शेर

भेड़िया मार धाड़ करते फिरते हैं, अन्य भी अनेक प्रकार के उपसर्ग होते रहते हैं; परन्तु वह कुछ भी दुख नहीं मानते न अपने ध्यान से ही डिगते हैं और न कुछ किसी प्रकार का विकार ही मन में लाते हैं, न नहाते हैं न धोते हैं, जंगल की सेगों धूल उड़ उड़ कर उनके शरीर पर चिपटती रहती है परन्तु वह न झाड़ते हैं न पोंछते हैं और न खाज ही खुजाते हैं. कोई उनकी पूजा करै गुण गावे वा मारे पीटे गाली दे बुरा कहै, दोनों को समान समझते हैं, दोनों का ही भला चाहते हैं. ऐसे साधु सच्चे गुरु कहलाते हैं और पूजने योग्य होते हैं। इनही साधुओं में जो साधु संघ के संघ-पति होते हैं, जिनकी आज्ञा के अनुसार ही संघ के सब साधु चलते हैं, जो किसी प्रकार की ग़लती हो जाने पर साधुवों को दंड देते हैं और सच्चे रास्ते पर चलाते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। साधु संघ में जो अधिक विद्वान् होते हैं और दूसरे साधुओं को पढ़ाते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं।

इस प्रकार साधुओं के भी तीन भेद होते हैं। आचार्य उपाध्याय और बाक़ी सब साधु। देव वा परमात्मा के दो भेद अर्हंत और सिद्ध। साधुओं के तीन भेद आचार्य, उपाध्याय और साधु। यह सब पंच परमेष्ठी कहलाते हैं। नमस्कार मंत्र में इनही पांचों को नमस्कार किया जाता है, णमो अरिहंताणं अर्हंतों को नमस्कार हो; णमो सिद्धाणं, सिद्धों को नमस्कार हो; णमो आइरियाणं, आचार्यों को नमस्कार हो; णमो उवज्झायाणं, उपाध्यायों को, नमस्कार हो; णमो लोए सव्ब-साहूणं. लोक भर के सब साधुओं को नमस्कार हो। यह पंच नमस्कार मंत्र है। सच्चे देव अर्थात् अर्हंत और सिद्ध सच्चे साधु अर्थात् आचार्य उपाध्याय और मुनि, आचार्यों के बनाये हुये सच्चे शास्त्र, इन तीनों का ठीक ठीक श्रद्धान हो जाने से अर्थात् इनपर सच्चा विश्वास लाने से भी सच्चा श्रद्धान

अर्थात् सम्यग्दर्शन हो जाता है, इनकी ठीक ठीक पहचान होने से भी सातों तत्वों का ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है और श्रद्धान भी ठीक होने से फिर स्त्री पर्याय का मिलना नरक और तिर्यंच गति में जाना, दुखी दरिद्री और बेढंगा शरीर होना इन सब ही खोटी खोटी अवस्थाओं का होना बिलकुल ही बन्द हो जाता है।

श्री अर्हंत और सिद्ध क्यों पूज्य हैं? जिन्होंने संसार से सर्व प्रकार का नाता तोड़, विषय कषाय से मुँह मोड़, रागद्वेष को बिलकुल ही छोड़, अपनी आत्मा को अत्यंत शुद्ध और पवित्र बना परम शान्ति रूप असली परमानन्द प्राप्त कर लिया है। वह हमारा भला बुरा करने के वास्ते अपनी परम शान्ति को तोड़ क्यों इस रागद्वेष के महा जंजाल में फंसने लगे हैं, वह तो किसी तरह भी हमारा भला बुरा करने के वास्ते तैयार नहीं हो सकते हैं उनसे तो अगर हम अपने किसी सांसारिक कार्य की सिद्धी की प्रार्थना करते हैं और कुछ आशा रखते हैं तो इसमें तो हमारी ही भूल है, इस ही तरह अगर मुनि महाराज से जो घर बार छोड़कर, यहां तक कि लिंगोटी तक फेंककर राग द्वेष को नाश करने के वास्ते जंगल में भारी तपस्या कर रहे हैं, हम अपना कोई बोझा उठवाने, रोटी पकवाने या हमारे घोड़े के वास्ते घास खोद लाने व ऐसा ही अन्य कोई सांसारिक कारज कर देने की प्रार्थना करने लगें तो क्या वह महा मुनि हमारा कारज कर देने को तैयार हो जावेंगे। नहीं हर्गिज़ नहीं, हम चाहे जितनी खुशामद करें हाथ जोड़ें पैरों पड़ें, गिड़गिड़ावें, स्तुति गावें, चाहे जो भेंट चढ़ावें, वह मुनि महाराज तो हमारी इन बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं देंगे। ऐसा करना होता तो अपनी स्त्री पुत्र आदि को बिलकता छोड़कर घर बार ही क्यों त्यागते और

मुनि ही क्यों बनते, इस ही प्रकार कोई दूसरा भी हमारा सांसारिक कार्य वह सिद्ध नहीं कर सकते हैं। तब फिर हम इनको क्यों पूजें और पूजें तो किस तरह पूजें ? इसका जवाब यह है कि उनके वीतराग रूप गुणों को ध्यान में लाने से, उनके इन गुणों की बड़ाई गाने से हमको भी अपने राग द्वेष कम करने, संसार के मोह को घटाने, कषायों को दबाने, विषय भोगों से मन को हटाने, इन्द्रियों को वश में लाने का ख्याल पैदा होता है, जिससे कम से कम उतनी देर के लिए तो हमारे परिणाम निर्मल होकर पुण्य का ही बंध होता है। इस वास्ते देव और गुरु की पूजा और स्तुति अपने परिणामों में वीतरागता लाने के वास्ते ही करनी चाहिये। इस ही से हमको पुन्य का बंध हो सकता है, श्री वीतराग भगवान से और वीतरागता की साधना करने वाले साधुओं से अपने संसार के किसी भी कारज की सिद्धि की इच्छा रखना तो साक्षात मिथ्यात्व ही है जिससे पाप बंध होने के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता है। यह ही बात पंच नमस्कार मंत्र के जपने में है। उसमें भी वीतराग देव और वीतराग रूप साधुओं को ही नमस्कार किया जाता है। शास्त्र तो सिवाय ज्ञान के और कुछ दे ही नहीं सकते हैं; सो भी जो कोई उनको पढ़ेगा, सुनेगा, और समझेगा, उस ही को ज्ञान प्राप्त होगा, केवल हाथ जोड़ने स्तुति गाने वा अष्ट द्रव्य चढ़ाने से तो कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होगा, उनको तो पढ़ना, सुनना और विचारना ही उनकी पूजा है, वीतरागता का कथन करने वाले इन जैन शास्त्रों के पढ़ने सुनने और विचारने से ज्ञान भी प्राप्त होता है और भाव भी निर्मल होते हैं, इस ही से शास्त्र स्वाध्याय करना भी एक प्रकार का बहुत बड़ा तप है जिससे कर्मों का आना भी रुकता है और बंधे

कर्म भी झड़ते हैं और जो कर्म बंधते हैं वह पुन्य रूप ही बंधते हैं।

यह संसार अनादि काल से चला आ रहा है, और अनंत काल तक रहेगा, इसका न कभी ओड़ हुआ और न कभी अंत ही होगा, इसका न तो कोई बनाने वाला है और न कोई बिगाड़ने वाला है और न इसका कोई इन्तज़ाम करने वाला ही है, कोई इन्तज़ाम करने वाला या चलाने वाला होता तो क्या संसार में ऐसा ही हाहाकार मचा रहता जैसा देखने में आरहा है, जीव ही जीव का वैरी बन रहा है, बिल्ली चूहों को ढूंड २ कर खाती फिरती है, बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को हड़प कर रही हैं, शेर और भेड़िये पशुओं को मारकर खाजाने के सिवाय अन्य किसी तरह जी ही नहीं सकते हैं, सांप बिच्छू अलग फिर रहे हैं, भिरड़ ततैइये अलग दुख दे रहे हैं। अगर कोई संसार का बनाने वाला होता तो क्या ऐसे जीव रचता और उनका ऐसा स्वभाव रखता, ऐसा ही और भी सब तरफ़ अंधेर ही अंधेर नज़र आता है, जिससे साफ़ साबित है कि इस दुनिया को न तो किसी ने बनाया है और न कोई इसको चला ही रहा है, यह तो वस्तुओं के अपने २ स्वभाव के अनुसार अनादि काल से ऐसे ही चल रहा है।

ऐसे ही जीवों के कर्मों का फल देने वाला भी कोई नहीं है, हम अगर नीम का पत्ता चबावेंगे तो आपसे आप हमारा मुँह कड़वा हो जावेगा, कोई हमारा मुंह कड़वा करने नहीं आवेगा, मिसरी खावेंगे तो मुंह आप से आप मीठा हो जावेगा, आग में हाथ देंगे तो जलेगा ही, कोई जलाने वाला नहीं आवेगा, ऐसा ही और भी सब बातों की

बाबत समझ लेना चाहिये, यह ही हाल कर्मों का है, जैसे हमारे परिणाम होंगे वैसा ही उनका फल होगा, कोई फल देने वाला होता तो रियायत भी कर जाता, भूल चूक भी कर देता, ख़ुशामद से ख़ुश होकर माफ़ भी कर देता, परन्तु जब स्वभाव के अनुसार आप से आप ही फल मिलता है तब तो कुछ भी रियायत नहीं हो सकती है, नीम के पत्ते चबाकर चाहे कितनी भी ख़ुशामद करो, हाथ जोड़ो, पूजा करो कि हे नीम के पत्ते तुम हमारा मुंह कड़वा मत करना तो वह तो कुछ भी नहीं सुनेगा, मुंह कड़वा करके ही रहेगा। यह ही कर्मों का हाल है, हां ! जैसे पेट दर्द करने वाली चीज़ खाने से, पेट दर्द होने पर कोई तेज़ हाज़मा करने वाली दवा खाने से पेट दर्द हट जाता है, इस ही तरह बुरा कर्म करले पर फिर कोई ज़्यादा अच्छा कर्म करने से उस बुरे कर्म का असर भी हट सकता है।

यह सब बातें अच्छी तरह सोच समझ कर मेरी प्यारी बहनो ! तुम अपने या अपने बेटा बेटी या अन्य किसी अपने प्यारे का दुख दूर करने या किसी प्रकार का सुख प्राप्त कराने के वास्ते किसी भी देवी देवता को मत मनाओ, न कोई जंतर मंतर गंडा तावीज़ या झाड़ा फूकी ही कराओ, दुनिया के सब काम जिस तरह बनते और सुधरते हैं, उस ही तरह तुम भी बनाओ और संवारो, जिस तरह आटे की रोटी थेपकर आग पर सेकने से ही खाने लायक़ होती है, किसी प्रकार की पूजा स्तुति या मंतर जंतर से ही सिक कर खाने लायक़ नहीं हो सकती है, फटा हुआ कपड़ा सूई तागे से सिये बिना नहीं सिल सकता है, मैला कपड़ा बिना धोये साफ़ नहीं हो

सकता है, आम की गुठली बोये बिना आम का पौदा नहीं उग सकता है, इस ही तरह संसार के अन्य भी सब काम उनके स्वभाव के मुताबिक़ काम करने से ही बनते में; किसी देवी देवता को मनाने या जंतर मंतर कराने से नहीं बन जाते हैं, यह ही हाल बीमारी का है, वह भी ठीक ठीक दवा करने से ही जाती है, जंतरों मंतरों से नहीं, बच्चों के बीमार होने पर हिन्दुस्तान में जंतर मंतर ज़्यादा कराये जाते हैं, और दवा दारू कम, इस वास्ते यहां एक हज़ार बच्चों में से चार सौ बच्चे मर जाते हैं, अंग्रेज़ों की विलायत में जंतर मंतर बिलकुल भी नहीं कराते हैं, दवा दारू ही करते हैं, इस वास्ते वहां हज़ार बच्चों में चालीस ही मरते हैं; अंग्रेज़ लोग जो जंतरों मंतरों और देवी देवताओं पर कुछ भी विश्वास नहीं रखते हैं, अपने पुरुषार्थ के ही भरोसे रहते हैं वह तो हज़ारों कोस से आकर यहां राज कर रहे हैं और मालामाल हो रहे हैं, पर हिन्दुस्तानी जो देवी देवताओं और जंतरों मंतरों पर भरोसा करते हैं वह भूखे कंगाल और ग़ुलाम बन रहे हैं।

इस ही तरह अन्य भी सब बातों पर विचार करके मिथ्यात्व को छोड़ो, संसार में जो कुछ होता है वह हरएक वस्तु के स्वभाव के अनुसार सामग्री जुटाने और निमित्त मिलाने से ही होता है, इस अटल सिद्धांत पर विश्वास लाकर अपने श्रद्धान को ठीक बनाओ, इस ही से लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं और इस ही से सब कारज सिद्ध होते हैं।

हाथ पैर आदि जैसे शरीर के आठ अंग हैं, इस ही तरह सम्यक् श्रद्धान के भी आठ अंग हैं, जिनके बिना

सम्यक्त्व अधूरा ही रहता है, इस कारण उनका जानना और धारण करना भी ज़रूरी है, जो इस प्रकार हैं।

(१) **निःशंकित**—अर्थात् सात तत्वों का और सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का जो श्रद्धान किया है उसमें डावांडोल नहीं होना, कोई बड़ी भारी भयंकर बीमारी होजाय, या दूसरी कोई भारी आफ़त आ जाय, जिसके दूर करने के वास्ते सब ही उपाय निष्फल होते हों, उस वक्त भी मन डावांडोल होकर इधर उधर न भटकने लगे, रागी द्वेषी देवी देवताओं को न पूजने लग जावे, झाड़ा फूंका और गंडे तावीज़ न कराने लगे, बेसुध होकर वीतराग भगवान से भी आई हुई आफ़त के दूर करने की प्रार्थना न करने लग जावे, भय खाकर अपने श्रद्धान को न भ्रष्ट कर लेवें, जो सच्चा उपाय है वह ही करता रहे और ज़रा भी न घबरावे, जो हो उसको धीरज और साहस के साथ सहन करे।

स्त्रियां अपने ऊपर आये संकट को सह लेती हैं, परन्तु पुत्र प्राप्ति की इच्छा में और अपने बच्चों की बीमारी में बिल्कुल ही बेसुध हो जाती हैं, धर्म, अधर्म का विचार छोड़कर करने न करने सब ही काम करने लग जाती हैं, जिससे कारज तो उनका सिद्ध होता नहीं, हां! भारी पाप बंध होकर आगे को भी दुख भोगने का कारण ज़रूर पैदा हो जाता है, इस वास्ते हमारी बहनों को इस बात की पूरी संभाल रखनी चाहिए कि किसी हालत में भी मन डांवाडोल न होने पावे, अपने सच्चे श्रद्धान में किसी प्रकार का फ़रक़ न पड़ जावे, आत्मा का सच्चा कल्यान करने वाला धर्म एक ऐसा अनमोल पदार्थ है जो मनुष्य पर्याय में ही प्राप्त होता है, मनुष्य पर्याय में भी हज़ारों लाखों में किसी २

को ही हासिल होता है, इसको खो देना तो ऐसा है जैसा कि हाथ आया रत्न समुद्र में फेंक देना, जो फिर हाथ आना बहुत ही मुश्किल है, इस कारण अपने सच्चे श्रद्धान की संम्हाल तो बहुत ही सावधानी से रखनी चाहिये।

शास्त्र की कोई बात समझ में न आती हो, शंकाएं उठती हों, तो बार बार शास्त्र पढ़कर, बड़े बड़े शास्त्रों में ढूंढ भालकर या जानकारों से पूछ ताछकर शंकाओं को बराबर दूर करती रहो, इससे श्रद्धान बिगड़ता नहीं है, बल्कि और भी ज़्यादा २ निर्मल और शुद्ध होता है, हां हठ किसी बात को न करो, पहले कोई ग़लत बात श्रद्धान में आ रही थी पीछे किसी शास्त्र में या जानकार से वह ग़लती मालूम हो जाय तो ग़लती को फौरन छोड़ दो, सही बात मालूम होने पर भी अगर ग़लती को नहीं छोड़ोगी तो श्रद्धान भ्रष्ट हो जायगा।

निःकांक्षित—अर्थात् इच्छा न करना। धर्म का साधन एक मात्र अपनी आत्मा को राग द्वेष के मैल से साफ़ करने के वास्ते ही किया जाता है, पंच नमस्कार मंत्र का जाप, वीतराग भगवान के दर्शन; पूजा, स्तुति, व्रत, नियम, जप, तप, संयम, उपवास, दान और त्याग आदि जो कुछ भी किया जाता है वह सब अपनी आत्मा को शुद्ध करने के वास्ते ही होता है। जो कोई ना समझ अपने किसी सांसारिक कारज की सिद्धी के वास्ते धर्म करने लगे तो वह तो उल्टा पाप ही कमाता है, जो कोई अपने किसी संकट को दूर करने के वास्ते या अपनी किसी इच्छा को पूरी करने के वास्ते पूजा पाठ करता है, दान देता है, जाप जपता है, या अन्य कोई धर्म कार्य करता है तो वह तो अपने श्रद्धान को भी बिगाड़ता है और

संसार के तीव्र मोह के कारण पाप का भी बन्ध करता है। धर्म तो किसी संसार के ग़रज़ के विना एक मात्र अपनी विषय कषायों को कम करने, राग द्वेष को घटाने भावों को शुद्ध करने और परिणामों में शांति लाने के वास्ते ही किया जाता है तब 'उससे पुन्य बन्ध होकर संकट भी आप से आप ही दूर हो जाता है और कारज सिद्ध हो जाता है। इस कारण कभी कोई धर्म कार्य किसी कारज की सिद्धि के वास्ते मत करो, जो कुछ धर्म के नाम से करो वह सब अपने परिणामों की ही शुद्धि के वास्ते करो।

(३) **निर्विचिकित्सा**—अर्थात् घृणा न करना। मुनि महाराज को अपनी देह से कुछ भी मोह नहीं होता है, इस वास्ते वह उसको संवारते नहीं, न नहाते हैं, न धोते हैं, न दांत साफ़ करते हैं, न आंखों की ढीढ ही उतारते हैं। वह तो नंग धड़ंग खुले मैदान में बैठे हुये अपनी आत्मा की शुद्धि में ही लगे रहते हैं, सेरों धूल उनके शरीर पर जमकर, मैल के लेवड़ लग जाते हैं जिस से बहुत ही भौंड़ी घिनावणी शक्ल बन जाती है, कमंडल में जो पानी उनके पास होता है उससे टट्टी जाकर शौच लेने के बाद हाथ भी किसी मिट्टी से नहीं मटियाते हैं, और न किसी दूसरे पानी से ही धोकर शुद्ध करते हैं, शुद्ध कैसे करें उनके पास कमंडल में भरे हुये इस टट्टी के पानी के सिवाय और कोई दूसरा पानी ही नहीं होता है, जिससे वह हाथ शुद्ध करलें, लाचार उनहीं अशुद्ध हाथों से वह शास्त्र स्वाध्याय करते हैं और लिये फिरते हैं, समाप्त हो जाने पर किसी मन्दिर जी में छोड़ देते हैं और दूसरा ले लेते हैं।

धर्म से अनजान स्त्रियों को उनकी यह सब बातें घिणावनी लगती होंगी परन्तु जो धर्म का सच्चा स्वरूप जानते हैं और सच्चे श्रद्धानी हैं वे उनसे घृणा नहीं करते हैं, वल्कि जितना २ वह उनको देह से निर्मोही और आत्म शुद्धि में लीन देखते हैं उतनी ही उतनी ज़्यादा भक्ति उनकी करते हैं, शरीर का शुद्ध करना धर्म नहीं है, शरीर तो हाड मांस खून चमड़ा जैसी अपवित्र वस्तुओं का बना हुआ है। गू मूत उसमें हर वक्त भरा रहता है इस कारण वह तो सात समुद्रों के पानी से धोकर भी शुद्ध नहीं हो सकता है, मोही जीव साफ़ सुथरी देह को पसन्द करते हैं, मैली कुचैली से घृणा करते हैं. इस ही वास्ते वह अपनी देह को धोते मांजते हैं, इतर फुलेल लगाते हैं, सुन्दर २ कपड़ों और ज़ेवरों को सजाते हैं, देह को ही नहीं अपने मकान को और अन्य भी अपनी सब ही चीज़ों को साफ़ सुथरा रखते हैं और खूब सजाते हैं, गृहस्थी मोह बस ऐसा करें, इसके लिये उनको कोई मना नहीं करता है, उनको तो देह से बड़ा भारी मोह है, उनको तो इसका तन्दरुस्त रखना भी ज़रूरी है, जिसके लिये नहाना और बदन को साफ़ रखना बहुत ज़रूरी है, यह सब काम वह ज़रूर करें, लेकिन इस नहाने धोने और सफ़ाई रखने को वह धर्म न समझें। गृहस्थ के अन्य सब कामों की तरह इसको भी गृहस्थ का मोह ही समझें और जो शरीर का मोह छोड़कर इसको साफ़ नहीं रखते हैं, अपनी आत्मा की ही सफ़ाई में लगे रहते हैं उनसे घृणा न करें, बल्कि अपने से अधिक शुद्ध और पवित्र समझकर हृदय से उनकी भक्ति करें और गुण गावें।

नहाना धोना और बदन साफ़ रखना धर्म नहीं है यह तो देह का मोह है, मुनियों को देह का मोह नहीं, इस ही वास्ते उनको नहाना धोना मना है। गृहस्थियों को देह का मोह है इस वास्ते उनको नहाना धोना मना नहीं है, परन्तु जो गृहस्थी आठैं चौदश को उपवास करते हैं, उस दिन उनको भी नहाने धोने, कपड़े बदलने और शृंगार करने की मनाही है, कारण उस दिन उनको भी गृहस्थ का सब धंधा छोड़ कर धर्म साधन में ही लगा रहना होता है, उस दिन तो उनको देह से मोह छोड़ कर अपनी आत्मा को ही शुद्ध करने में लगना है, तब देह के धोने पोंछने में क्यों लगें। नहाना धोना और बदन को साफ़ रखना धर्म होता तब तो उपवास के दिन बार बार नहाते रहने की ही आज्ञा होती, पर शास्त्र में तो उस दिन नहाने धोने की मनाही है, इससे साफ़ ज़ाहिर है कि नहाना धोना धर्म नहीं है बल्कि धर्म का विरोधी है, तब ही तो मुनियों को भी नहाने की मनाही है और उपवास के दिन गृहस्थियों को भी— अगर नहाना धोना ही धर्म होता तब तो मच्छी जो हर वक़ पानी में रहती है सब से ही ज़्यादा धर्मात्मा होती। शास्त्रों में तो संसार की अन्य भोग सामग्री की तरह नहाने को भी विषय भोग बताकर भोगोपभोग परिमाण व्रत में नहाना त्यागने का भी विधान किया है।

जो स्त्रियां यह समझती हैं कि नहा धोकर बदन साफ़ होने की हालत में ही जाप, स्तुति, ध्यान, सामयिक, और स्वाध्याय आदि धर्म कर्म हो सकते हैं, जगह भी शुद्ध हो, कपड़े भी शुद्ध हों और शरीर भी धो पोंछकर

साफ़ किया हुआ हो तब ही कोई धर्म कार्य हो सकता हैं, वे बहुत भूल करती हैं, धर्म को बाहर की सफ़ाई से क्या वास्ता, देह साफ़ हो या न हो, कपड़े साफ़ हों या न हों, मकान साफ़ हो या न हो, आत्मा को तो हर वक़् ही साफ़ रखने की ज़रूरत है, धर्म साधन तो आत्मा के शुद्ध करने के वास्ते ही किया जाता है, बाहर की वस्तुवों को साफ़ करने के वास्ते नहीं, देह, कपड़े, मकान आदि बाहर की वस्तुओं को तो मोही जीव मोह बस आप ही साफ़ रखते हैं, धर्म से विमुख विषयों में फंसे हुए जीव तो मकान, कपड़े और देह संवारने मे ही अपना सारा जन्म बिता देते हैं, रात दिन इन ही सांसरिक वस्तुओं को धो मांज कर सुन्दर बनाने और सजाने में ही लगे रहते हैं, परन्तु ऐसा करने से वह कर्म बांधकर अपना संसार ही बढ़ाते हैं, पर जो धर्मात्मा हैं वह वाह्य वस्तुओं के सजाने, संवारने को छोड़ दिन रात अपनी आत्मा के ही शुद्ध करने में लगते हैं, मकान अशुद्ध हो चाहे ,कपड़े अशुद्ध हों या देह अशुद्ध हो, चाहे जो हो वह अपना धर्म सेवन कदाचित भी नहीं छोड़ते हैं। शास्त्र में भी साफ़ साफ़ लिखा है कि–

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत्पंच नमस्कारं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा
यः स्मरेत्परमात्मानं स वाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२॥

अर्थात् कोई पवित्र हो वा अपवित्र हो, अच्छी अवस्था में हो वा बुरी में, जो णमोकार मंत्र का ध्यान करता है, वह सब पापों से छूट जाता है। इस ही प्रकार जो कोई पवित्र हो वा अपवित्र हो, किसी भी अवस्था

को प्राप्त क्यों न हो, जो परमात्मा का स्मरण करता है वह अन्दर और बाहर दोनों तरफ़ से शुद्ध है।

शास्त्रों में यह बात इस ही कारण लिखी है कि अगर धर्मात्मा ज़्यादा बीमार होकर बिस्तर पर ही टट्टी पेशाब करता हो, बिल्कुल ही ग़लीज़ रहता हो तो उस अवस्था में भी उसको पड़े पड़े नमस्कार मंत्र का जाप, वीतराग भगवान की स्तुति और धर्म ध्यान आदि धर्म क्रिया जो भी उससे हो सकती हों, बराबर करते रहना चाहिये, ग़लीज़ रहने के कारण धर्म साधन को नहीं छोड़ देना चाहिये, बच्चा पैदा होने पर स्त्रियों को दस दिन ज़च्चा खाने में रहना पड़ता है, जहां ऐसी गिलाज़त रहती है कि ज़रूरत पड़ने पर भी कोई उसमें बड़ना मंज़ूर नहीं करता है, इस ही तरह चार दिन तो हर महीने ही स्त्रियों को अलग बैठना पड़ता है, तब तो वह ऐसी अपवित्र होती हैं कि घर की कोई चीज़ भी नहीं छू सकती हैं। ज़च्चा खाने से निकल कर भी स्त्रियां बहुत दिनों तक अपवित्र ही रहती हैं, हग मूत कर हर वक़्त ही बच्चा उनके बिस्तर और कपड़ों को अपवित्र करता रहता है, इस ही कारण बच्चेवाली स्त्री के बिस्तर में से हर वक़्त बू आती रहा करती है। घर का कोई आदमी ज़्यादा बीमार हो जाय तब भी स्त्रियों को ही उसकी टहल में अपवित्र रहना पड़ता है। इन सब ही हालतों में ऊपर लिखी शास्त्र की आज्ञा को याद करके धर्म साधन बिल्कुल भी नहीं छोड़ना चाहिये, धर्म भाव की जगह पाप भाव हृदय में नहीं लाना चाहिये।

वाह्य पवित्रता अपवित्रता रखना तो संसार का मोह है, चक्षु इन्द्री सुन्दर २ वस्तुओं को देखना चाहती

है; इस ही वास्ते घर बार को भी साफ़ सुथरा रखना पड़ता है, कपड़े लत्ते भी मैले कुचैले नहीं रहने दिये जाते हैं, बदन भी ख़ूब मल मल कर साफ़ किया जाता है, मन गंदी चीज़ पसंद नहीं करता है, इस ही वास्ते गंदगी भी कहीं रहने नहीं दी जाती है, जीभ कड़वी कसैली को पसंद नहीं करती है, इस ही वास्ते चटपटी नमकीन खट्टी मीठी अनेक प्रकार की मज़ेदार चीज़ें बना कर खाई जाती हैं, बहुत सी स्त्रियां तो इस जीभ के स्वाद के बस में यहां तक होती हैं कि बीमार पड़ने पर हकीम वैद्य की बताई कड़वी कसैली दवा भी नहीं खा सकती हैं, बीमारी का भारी दुख उठा लेंगी, पर कड़वी कसैली दवा नहीं खावेंगी, इस प्रकार जिह्वा इन्द्री के वस होकर वे कोई धर्म साधन थोड़ा ही कर रहीं हैं, उलटा कर्म बंध करके अपना संसार ही बढ़ाती हैं, इस ही तरह चक्षु इन्द्री के वस होकर या जुगुप्सा अर्थात् ग्लानी नाम की कषाय के वस होकर जो स्त्रियां शरीर वस्त्र और मकान को साफ़ सुथरा रखने में धर्म बताकर ज़रा अपवित्र होने पर धर्म साधन छोड़ देती हैं वह भी अपना संसार ही बढ़ाती हैं।

बात असल यह है कि ब्राह्मणों के हिन्दू धर्म में नहाने धोने और छूत पात करने को ही बड़ा भारी धर्म माना है। पितरों के श्राद्ध में जो ब्राह्मण मांस खाने को इन्कार करै उसको इक्कीस बार पशु पर्याय में जन्म लेना पड़ेगा। मनुस्मृति उनका बहुत मान्य ग्रन्थ है, जिसमें लिखा है कि यज्ञ में ब्राह्मण अपने हाथ से पशुओं को मारकर होम करै, वेदों में भी ऐसा ही लिखा है उनके शास्त्रों की ऐसी आज्ञा होने के कारण अनेक वेदपाठी ब्राह्मण मांस

मछली तो खाते हैं पर छूत पात इतना करते हैं कि उनके कपड़ों से भी कोई छू जाय तो फिर दोबारा नहाते हैं, जिस रसोई में वे मांस पका रहे हों उस रसोई की धरती पर अगर किसी शूद्र की छाया भी पड़ जाय तो उनकी वह रसोई भ्रष्ट हो जाती है, ऐसी ही अन्य भी अनेक प्रकार की छूत छात वे करते हैं और इस ही को सब से बड़ा धर्म समझते हैं, उनकी देखा देखी उनकी यह छूत छात जैनियों में भी आ गई है। बहुत करके स्त्रियां तो इस छूत छात के ही चक्कर में पड़कर अपने को धर्मात्मा समझने लग गई हैं, उनको जैन शास्त्रों से धर्म का असली स्वरूप समझ लेने की बहुत ज़रूरत है, जैन शास्त्रों में जब बहुत बड़ी ऊँची जाति वालों और बड़े बड़े धर्मात्माओं को शूद्र की कन्याओं से यहां तक कि म्लेच्छ तक की कन्याओं से व्याह करने की इजाज़त है, इससे उनका धर्म भ्रष्ट नहीं होता है बल्कि उस म्लेच्छ की कन्या से जो सन्तान हो वह भी मुनि बनने के योग्य होती है, श्री आदिनाथ भगवान के बेटे भरत महाराज ने म्लेच्छों की कन्याओं से व्याह किया तो भी उनके व्रती श्रावक होने में कुछ फ़रक़ नहीं आया, फिर वह ही दीक्षा लेकर कपड़े निकालते ही उस ही भव से मोक्ष गये, तब यह तो साफ़ ही है कि जैन धर्म में चूल्हे चौकी की छूत छात को धर्म नहीं माना है ऐसी छूत छात न होने से धर्म में कुछ फ़रक़ नहीं आता है।

धर्म तो एक मात्र विषय कषायों को कम करके अपनी आत्मा को शुद्ध और पवित्र करने में ही है, जो स्त्री अपनी जिह्वा इन्द्री के बस होकर बीमारी में भी कड़वी कसैली दवा नहीं खा सकती हैं, वह क्या धर्म

कर सकती है, धर्म करना है तो सब से पहले इन्द्रियों को बस करो, शरीर से ममत्व छोड़ो, जुगुप्सा नाम की कषाय को जिसके बस होकर घृणा कषाय उत्पन्न होती है दबाकर पवित्र अपवित्र चाहे कैसी भी हालत हो अपना धर्म कार्य कभी मत छोड़ो, बेशक मोह तुमसे छूटा नहीं है, इन्द्रियां भी पूरी तरह बस में नहीं हैं, इस वास्ते मकान अपना चाहे जैसा साफ़ सुथरा रक्खो, कपड़े भी चाहे जैसे साफ़ सुन्दर पहनो, बदन भी धो मांज कर चाहे जैसा निर्मल और सुन्दर बनाती रहो, परन्तु ऐसा करना मोह की लाचारी से ही समझो, इसको धर्म हर्गिज़ मत मानो और अगर किसी समय किसी कारण से सफ़ाई न रख सको तो सफ़ाई न रख सकने के बहाने से धर्म करना मत छोड़ो, चाहे जैसी हालत हो धर्म बराबर ही करती रहो।

गृहस्थी लोग मुनियों की तरह आत्म ध्यान में लीन नहीं हो सकते हैं, उनका मुख्य धर्म तो दुखियाओं पर दया करके उनकी सेवा करना ही है, इस ही से उनको पुण्य की प्राप्ति हो सकती है। इस सेवा धर्म को शास्त्रों में तो इतना ज़रूरी ठहराया है कि मुनियों के संघ में किसी मुनि के बीमार पड़ जाने पर दूसरे मुनियों को जप तप ध्यान स्वाध्याय आदि सब ही धर्म साधन छोड़ कर उसकी टहल सेवा करना ही सब से मुक़द्दम समझा जाता है, इस ही कारण दूसरे मुनि अपने हाथ से उसकी टट्टी, क़ै थूक बलग़म आदि सब ही कुछ उठाते हैं, बदन साफ़ करते हैं, हाथ पैर दबाते हैं, भोजन मांग लाकर खुलाते हैं, दिन रात पास बैठे रहते हैं और सब तरह की सेवा करते हैं, सेवा में लगे रहने से हमारा धर्म-

साधन बन्द हो रहा है ऐसा कुछ भी ख़याल मन में नहीं लाते हैं, इस प्रकार जब सब ही तरह का परिग्रह त्यागी महा मुनि भी इस सेवा धर्म को इतना ज़रूरी समझते हैं तो गृहस्थियों के वास्ते तो यह सेवा धर्म बहुत ही ज़रूरी समझना चाहिये।

परन्तु अनेक ऐसी स्त्रियां जिनको अपना अगन्त सुधारने का कुछ भी ख़याल नहीं होता है वह दुखियाओं की कुछ भी सेवा करने को अपनी शान के ख़िलाफ़ समझती हैं, यहां तक कि सास ससुर दुरानी जेठानी आदि घर का कोई आदमी भी ऐसा बीमार हो जाय जिसका गू मूत करने की ज़रूरत आ जाय तो उनकी भी गंदगी में पड़ना वे पसंद नहीं करती हैं, घर की कोई स्त्री ज़च्चा खाने में बीमार पड़ जाय, जिसकी टहल के वास्ते ज़च्चा ख़ाने में जाने की भारी ज़रूरत आ जाय, तब तो वह नहाई धोई साफ़ सुथरी रहने वाली महा पवित्र स्त्रियां साफ़ ही इन्कार कर देती हैं, इस प्रकार धर्म से बेपरवाह महा मानी स्त्रियों को हम कुछ नहीं कहते हैं, परन्तु जो बहिनें धर्म को ही सब कुछ मानती हैं और धर्म के वास्ते सब कुछ कष्ट सहने को तैयार रहती हैं उन धर्मात्मा बहनों को ज़रूर हम कुछ कहना चाहते हैं।

धर्मात्मा बहनो! सफ़ाई और शरीर की पवित्रता और अपवित्रता का ख़याल तो तुम उनही के वास्ते छोड़ दो जिनको धर्म ज़्यादा प्यारा नहीं है, सुफल और साफ़ सुथरा रहना ही जिनको अधिक प्यारा है, पर तुम जो धर्म साधन के द्वारा अपनी अन्दर की आत्मा को शुद्ध और पवित्र बनाना चाहती हो, तुम जो धर्म साधन के वास्ते सर्व प्रकार का कष्ट उठाकर अपना अगंत सुधारना

चाहती हो, तुम अपनी देह की पवित्रता अपवित्रता का कुछ भी ख़याल न करके ऐसे बीमारों की टहल करना अंगीकार करो जिनकी टहल उनके घर वाले नहीं कर रहे हैं, वह तुम्हारे कोई रिश्तेदार हों या न हों, ग़रीब हों, कंगाल हों, चाहे जैसे हों, तुम उनकी सेवा ज़रूर करो, अगर तुम उनके घर जाकर सेवा नहीं कर सकती हो तो अगर वह कोई स्त्री है तो उसको अपने घर ले जाओ, उसके गू मूत थूक सिनक से तुम्हारा घर गंदा ज़रूर होगा और तुमको भी हर वक़ गंदगी में ही रहना पड़ेगा, परन्तु इससे तुम्हारे अंदर की आत्मा महा पवित्र और निर्मल ज़रूर हो जायगी, तुमको महा पुण्य का बंध होगा और तुम्हारा अगंत सुधर जायगा, इस ही प्रकार अन्य भी सर्व प्रकार के धर्म साधन में बाहर की सफ़ाई की ज़्यादा परवाह न करके अन्तर आत्मा की सफ़ाई का ही ज़्यादा ख़याल रक्खो, इस ही से तुम्हारा सच्चा धर्म साधन होगा।

(५) **अमूढ़ दृष्टि**—बिना सोचे समझे बिना जांचे तोले किसी बात पर श्रद्धान न करना, हर एक बात दलील और हुज्जत के साथ ख़ूब अच्छी तरह परीक्षा करके ठीक ठीक वस्तु स्वभाव के अनुकूल निकलने पर ही माननी चाहिये, अंधी श्रद्धा बड़ा धोखा देती है, मनुष्य इस ही वास्ते तो डंगरों से ऊँचा है कि उसमें अक़ल है, जिससे वह भले बुरे, खरे खोटे और सच झूठ की पहचान कर सकता है, दुनिया में सैंकड़ों बनावटी धर्म प्रचलित हो रहे हैं, जिनकी बहुत सी बातें अपने लोगों में भी घुस आई हैं, बहुत करके स्त्रियां तो बहुत जल्द मिथ्या बातों को मान लेती हैं और आंख मीच कर मिथ्यात्व सेवन

करने लग जाती हैं, बहुत लोग दुनियां में प्रचलित लौकिक व्यवहारों को ही धर्म मान लेते हैं। लौकिक व्यवहार देश देश के, जगह जगह के और जाति जाति के अलग अलग होते हैं, चार पांच मिलकर उन व्यवहारों को बदल भी सकते हैं, धर्म कोई ऐसी चीज़ थोड़ा ही है जो पंचों के हाथ में हो, धर्म तो आत्मा का स्वभाव है, मोह और विषय कषायों में फंसने के कारण आत्मा का असली स्वभाव ख़राब हो रहा है, उस ही को ठीक करने का जो उपाय है वह ही धर्म साधन है, तब धर्म का रीति रिवाजों से क्या वास्ता, इस कारण धर्म के मामले में तो बिल्कुल अपनी अक्ल से ही काम लो, बिना सोचे समझे रीति रिवाज के कारण ही किसी बात को धर्म मत मानने लग जाओ, दस स्त्रियां जिस तरह चलती हैं, जिसको वे धर्म समझती हैं हम भी उस ही को धर्म समझने लगें और वैसा ही करने लगें, इसही को अन्ध श्रद्धा कहते हैं, जिसको दस स्त्रियों में धर्मात्मा बनकर उनकी वाह वाह लेनी हो, वे चाहे ऐसा करें परन्तु जिनको अपनी आत्मा का सच्चा कल्याण करना है और वाह २ की कुछ परवाह नहीं है, उनको तो किसी की भी रीस नहीं करनी चाहिये और न इस बात से डरना ही चाहिये कि अगर इन सब स्त्रियों के अनुसार नहीं चला जायगा तो ये बुरा कहेंगी, बदनाम करेंगी और तिरस्कार करेंगी, सच्चे धर्मात्मा को तो न तो अपनी बड़ाई की ही परवाह होती है और न बुराई से डर, उसको तो एक मात्र अपनी आत्मा के कल्याण की ही फ़िकर होता है, इस कारण मेरी बहनो दुनिया के कामों में चाहे तुम दुनिया के मुताबिक चलो, पर धर्म के कामों में तो सोच समझकर ही काम करो और किसी की रीस मत करो।

(६) उपगूहन अर्थात् छिपाना—संसार में कुछ ऐसा देखने में आता हैं कि लोग अपने भाई, बेटे और सगे संबंधी का तो भारी से भारी भी ऐब छिपा लेते हैं और ग़ैरों के छोटे से छोटे ऐब की भी डौंडी पीटने लग जाते हैं, सच्चा श्रद्धानी किसी का भी दोष उजग्गर नहीं करता है, उजागर करने से तो ऐब करने वाला निर्लज्ज हो जाता है जिससे उसको फिर दोबारा ऐब करने में भी कुछ डर नहीं रहता है, सच्चा श्रद्धानी किसी के दोष को उजग्गर न करके उसको एकान्त में समझाता है जिससे वह लज्जित होकर आगे को दोष करना छोड़ देता है, अगर सब ही के साथ ऐसा व्यवहार न हो सके तो सच्चे श्रद्धानी को धर्म से प्रेम होने के कारण जैन धर्म को मानने वाले सब ही लोगों को तो अपना भाई मानकर उनका दोष तो हर्गिज़ भी उजग्गर नहीं करना चाहिए बल्कि प्यार मुहब्बत से एकान्त में समझा बुझाकर वह दोष उससे ज़रूर छुड़ा देना चाहिये, जिसको धर्म से सच्चा प्रेम होगा वह जैन धर्म को मानने वाले सब ही लोगों को, वह चाहे अमीर हो व ग़रीब, अपनी जाति का हो व ग़ैर जाति का, ऊंच हो वा नीच सब ही को अपने सगे भाई से भी ज़्यादा समझेगा और जिस तरह भी हो सकेगा उसके ऐब छुड़ाने की कोशिश करेगा।

स्थिति करण अर्थात ठहराना—अगर कोई किसी कारण से धर्म श्रद्धान से गिर जाय, या आचरण में भ्रष्ट हो जाय तो कोशिश करके जिस तरह भी हो सके उसको धर्म में फिर स्थिर कर देना चाहिए, खोटी संगति में पड़कर, खाने पीने से तंग आकर, बेटा बेटी के मोह में बेसुध होकर उनके किसी कष्ट के दूर करने के

वास्ते वा किसी प्रकार की विषय कषायों में फंस जाने से मनुष्य धर्म भ्रष्ट हो जाता है, जिनको धर्म का सच्चा प्रेम है वह इस प्रकार धर्म से डिग जाने वालों को धक्का देकर अपने से अलग नहीं कर देते हैं, बल्कि जिस तरह भी होसके उसका कष्ट दूर करके और प्यार मुहब्बत से समझा बुझा करके उस को फिर धर्म में लगा देते हैं और फिर भो ऐसा ही आदर करते हैं जैसा पहले करते थे, ज़रा भी फ़रक़ नहीं आने देते हैं, जिस से उस के हृदय को चोट न लगे और फिर दोबारा धर्म न छोड़ बैठे, जहां आदर नहीं होता वहां रहना कोई भी पसंद नहीं करता है इस वास्ते आदर में ज़रा भी फ़रक़ नहीं आना चाहिये उस को तो सब तरह छाती से ही लगाये रखना चाहिये, गृहस्थो की तो बात ही क्या है मुनि तक भी भ्रष्ट हो जाते हैं श्री आचार्य उनको दोबारा दीक्षा देकर फिर संघमें शामिल कर लेते हैं।

जीव अनादिकाल से नीच, अधर्मी, पापी और मिथ्यावी चला आता है, धर्म की प्राप्ति तो उसको बहुत ही पीछे होती है, धर्म ग्रहण करके भी अनेक बार मिथ्यात्वी होता है और अनेक बार धर्म ग्रहण करता है तब धक्का किस किसको दिया जावे, हज़ार बार गिर कर भी अगर कोई धर्म में स्थिर हो जाय तो बहुत बड़ी बात समझनी चाहिये, हम तुम जैसों की तो बात ही क्या है, श्री तीर्थंकरों के पहले भव पढ़ो तो मालूम हो कि कैसे २ नीच भवों में उनका जन्म हुआ है और

कैसे २ नीच कार्य उन्होंने किए हैं फिर किस तरह धर्म ग्रहण किया है और किस तरह उन्नति करते २ तीर्थंकर पद प्राप्त किया है, याद रक्खो और अच्छी तरह याद रक्खो कि जिस प्रकार कान से सोना मैला ही निकलता है, साफ़ कभी नहीं निकलता है, फिर पीछे से ही साफ़ किया जाता है, इस ही तरह जीव भी पहले से मिथ्यात्वी, अधर्मी और पापी ही चला आता है, धर्म तो पीछे ही ग्रहण करता है, सोना भी शुद्ध करने के बाद टांका आदि लगने से खोटा हो जाता है, परन्तु इस प्रकार खोटा हो जाने पर कोई उसे फेंक नहीं देता है बल्कि जिस तरह भी हो सके उसको फिर शुद्ध करा लिया जाता है, इस ही प्रकार मनुष्य को भी धर्म भ्रष्ट हो जाने पर धक्का नहीं देना चाहिये, किन्तु कोशिश के साथ समझा बुझा कर फिर दोबारा धर्म पर क़ायम कर फिर उस ही तरह उसका आदर करना चाहिये जैसे खोटे सोने का आदर उसको साफ़ कराने के बाद किया जाता है। जिसको धर्म का प्रेम है उसको तो पतित से पतित और नीच से नीच को भी धर्म में लगाने की फ़िकर रहती है इस ही से धर्म भाव बढ़ता है और आत्मा पवित्र होकर कर्मों की निर्जरा होती है।

(७) वात्सल्य अर्थात प्यार—कोई नीच हो या ऊँच, ग़रीब हो या अमीर, चाहे कोई हो जिसने भी जैन धर्म ग्रहण कर लिया हो, धर्म के नाते उसको अपना भाई समझकर उसके साथ ऐसा ही प्यार रखना चाहिये जैसे सगे भाई बहन के साथ; जहां तक अपने से हो सके उनका दुख दूर करने और सहायता पहुंचाने की कोशिश करते रहना चाहिए। यह ही सच्चा धर्म प्रेम है।

(८) प्रभावना अर्थात् असर डालना—अपनी नेकी से, परोपकार से, शुभ आचरणों से, ज्ञान से, ध्यान से, उपदेश से, दया से, धर्म से, जैन धर्म की बड़ाई लोगों के हृदय पर जमाना सच्चे धर्म प्रेम का लक्षण है, जैनी सच्चे श्रद्धानी, दयावान, सच बोलने वाले, सब से प्रीति रखने वाले, सब के काम आने वाले, छल कपट से रहित, सरल स्वभावी, शीलवान, मंद कषायी, भद्र परिणामी होते हैं ऐसी प्रभावना जैनियों के चाल चलन से लोगों के दिलों में बैठ जानी चाहिए यह ही सच्ची धर्म प्रभावना है, जैन धर्म के श्रद्धानी का कोई भी चलन, कोई भी बात दिखावटी या बनावटी नहीं होनी चाहिये जो काम हो वह सब सच्चा और सीधा हो, धर्म के नाम पर हमारी जो दिखावटी और बनावटी क्रियाओं से लोग जैन धर्म को ही दिखावटी और बनावटी समझने लग जाते हैं, यह ही धर्म की अप्रभावना अर्थात् बदनामी है जो किसी तरह भी नहीं होनी चाहिये।

अनेक स्त्रियां जिनको रात्रि भोजन का त्याग होता है शाम को अंधेरा हो जाने पर भी जब तक दिया नहीं जलाती हैं, तब तक बराबर खाती रहती हैं, कोई दिया जलाने भी लगे तो उसको रोक देती हैं कि अभी तो खाना खाया जा रहा है दिया मत जला, स्त्रियों की यह क्रिया देख कर अन्यमती नौकर चाकर मन ही मन हँसते हैं और जैन धर्म को ढोंग ही समझने लग जाते हैं, इस ही तरह साग सब्ज़ी खाने का त्याग दया धर्म और जीव हिंसा से बचने के सबब बताया जाकर जब अपने ही हाथ से उन साग सब्ज़ियों को काट काट कर सुखाया जाता है तो इस अनोखे दया धर्म

पर भी अन्य मतियों को हंसी आती है और जैनधर्म की भारी बदनामी होती है, इस ही प्रकार की अन्य भी अनेक क्रियायें हैं, जिनको उलट पुलट किये जाने से धर्म बदनाम होता है, इस कारण धर्म के सब कार्य सच्चे धर्म भाव से बिलकुल क़ायदे के मुवाफ़िक होने चाहियें कोई भी क्रिया दिखावटी और बनावटी नहीं होनी चाहिये, जितना अपने से ठीक ठीक निभे उतना ही करना चाहिये. जो न निभ सके उसको बनावटी तौर पर करने की जगह न करना ही अच्छा है।

बात असल यह है कि हमारी बहुत सी बहनें धर्म साधन का सिलसिला और दर्जा मालूम किये बिना एक दूसरे की देखा देखी एकदम ऊपर की पैड़ी चढ़ जाती हैं, यहां टिकना उनकी ताक़त से बाहर होता है, इस ही से ज्यों त्यों बनावट बनाकर निभाती हैं जिससे पाप भी होता है और धर्म की अप्रभावना भी होती है।

मद अर्थात् घमंड वा मान

किसी बात का मद वा घमंड करने से सम्यक् श्रद्धान भ्रष्ट होता है, इस वास्ते सच्चे श्रद्धानी को घमंड किसी बात का भी नहीं करना चाहिये, श्री सर्वज्ञ देव के कथनानुसार संसार के सब ही जीव वह ही शक्ति रखते हैं जो सिद्धों में हैं। वह भी हमारी तरह ही संसार में रुलते फिरते थे, उनमें और संसार के अन्य जीवों में फ़रक़ सिरफ़ इतना ही है कि वे तो दुनिया को लात मारकर, अपनी आत्मा को शुद्ध कर, कर्मों को काट, वीतराग, सर्वज्ञ, परमानन्द और तीन लोक के नाथ होकर सिद्ध स्थान पर जा विराजे हैं और हम देह रूपी क़ैदख़ाने में बंद

मोह के नशे में बेसुध हो, अपने असली ज्ञानानन्द को खो, आंख नाक आदि इन्द्रियों के बस में पड़, विषय कषायों का ही नचाया नाच नाच रहे हैं, तब अपनी ऐसी महा नीच और पतित अवस्था में हम घमंड किस बात का करें, अगर किसी राजा का राज छीनकर उसके बेटे पोते भाई बन्द पकड़ कर भंगी के काम पर लगा दिये जावें, और उनही में से किसी एक को उनका जमादार बनाकर हुकम दिया जावे कि टट्टी ठीक साफ़ होती है या नहीं इसके लिये तुम नगर भर की खुड्डियां देखते फिरा करो और अपने इन भाइयों से सब टट्टियां खूब अच्छी तरह साफ़ कराते रहा करो, तो तुम ही बताओ कि अपने भाइयों पर इस तरह की हकूमत मिल जाने पर उस राजपुत्र को घमंड करना चाहिये या अपने अन्य भाइयों के साथ उसे भी शर्म के मारे डूब कर मरना चाहिये।

इस ही तरह तीन लोक का नाथ होकर भी जब यह जीव संसार में रूलता फिरता हुआ डले ढो रहा है, तो घमंड किस बात पर करे, कोई जीव किसी समय अगर अपने दस भाइयों से ऊँचा ही हो गया, तब भी है तो वह भी कर्मों की बेडियों में जकड़ा हुआ शरीर रूपी क़ैद खाने में क़ैद हो, फिर घमंड किस बात का, ऐसी दशा मे भी जो घमंड करता है, अपने को दूसरों से ऊंचा समझकर अकड़ता है, उसने तो अब तक अपनी असलियत को बिल्कुल भी नहीं पहचाना है, जिसको अपना असली स्वरूप मालूम हो गया है वह चाहे राजा हो, महाराजा हो, धन्ना सेठ हो, चाहे जो हो वह तो हर वक्त यह ही सोचता रहैगा कि हाय इस संसार

में पड़े हुए मेरी क्या दुर्दशा हो रही है. कब वह दिन आयेगा जब मैं अपने असली ज्ञानानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लूंगा, ऐसी महा सोच में वह तो अपना सिर भी ऊपर नहीं उठा सकेगा, अपने को नीच अति नीच अवस्था में पड़ा समझ लज्जित ही होता रहैगा, इस वास्ते प्यारी बहिनो तुम भी अपनी असलियत को पहचान कर घमंड करना छोड़ो।

आजकल बहुत करके हमारी बहनों को घमंड इस बात का होता है कि हम ऊँची जाति की हैं, इस घमंड का भूत सिरपर चढ़ने से वे नीच जाति वालों को बिलकुल ही वेहक़ीकत समझकर तिरस्कार की निगाह से देखने लग जाती हैं, जिनसे उनको अत्यन्त पाप का बंध होता है. श्री 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ में साफ़ लिखा है कि जिनकी बुद्धि भ्रष्ट होकर अपनी जाति या कुल का घमंड हो जाता है वह तुरन्त ही नरक निगोद आदि नीच गति में जा पड़ने का कर्म बांधता है, आगे इस ही ग्रन्थ में लिखा है कि कोई लंगड़ा हो, लूला हो, काना हो, दरिद्री हो, रोगी हो, नीच कुल का या नीच जाति का हो तो भी अगर वह सच्चा श्रद्धानी है तो महा शोभायमान और इज़्ज़त के लायक़ है, इस ही प्रकार 'रत्न करंड श्रावकाचार' में भी लिखा है कि किसी महा चांडाल की सन्तान भी अगर सम्यक् श्रद्धानी हो जाय तो स्वर्गों के देव तक भी उसको इज़्ज़त करते हैं, इस ही प्रकार श्री 'कुंदकुंद' जी महाराज भी 'दर्शन पाहुड़' में लिखते हैं कि किसी की देह या कुल या जाति पूजने योग्य नहीं है, पूजने योग्य तो वह ही है जो सच्चा धर्मात्मा है, चाहे वह मुनि हो वा श्रावक।

बहनो तुम भी अच्छी तरह सोचो कि चाहे कोई ब्राह्मण हो या क्षत्री, वैश्य हो या शूद्र, नीच हो या ऊँच देह तो सब का ही हाड मांस का बना हुआ होता है तब ब्राह्मण का हाड मांस पवित्र और शूद्र का हाड मांस अपवित्र यह कैसे माना जा सकता है, हम तुम सब ही हर रोज़ टट्टी में हाथ सानते हैं और फिर पानी से धोकर उनको शुद्ध समझ लेते हैं, स्त्रियां तो हर वक्त ही अपने बच्चों की टट्टी उठाती रहती हैं और धो पूंछ कर शुद्ध हो जाती हैं, तब भंगन जो लोगों के घरों की टट्टी कमाती फिरती है वह भी नहा धोकर शुद्ध क्यों न हो जाय, अगर यह कहो कि वह तो सारा दिन ही गंदगी में रहती है, तो अंग्रेज़ लोग जो खुद टट्टी जाकर भी हाथ नहीं मांजते हैं, कागज़ और स्पंज से ही साफ़ करते हैं, वह तो हमसे भी ज़्यादा शुद्ध समझे जाने चाहियें, उनके तो टट्टी के मकान भी ऐसे साफ़ सुथरे रहते हैं जैसे हमारे रसोई के मकान क्या बल्कि बैठने के कमरे भी ऐसे साफ़ नहीं रहते हैं, तब वे तो सब ही से ज़्यादा धर्मात्मा समझे जाने चाहियें।

कुल और जाति के इस झूठे घमंड को दूर कराने के वास्ते रत्न करंड श्रावकाचार में तो यहां तक दिखाया है कि धर्म धारण करने से जब कुत्ता भी देव हो जाता है और अधर्म करने से देव भी कुत्ता हो जाता है तब किसी भी जाति को बड़ी नहीं समझना चाहिये, बल्कि बड़ा उसी को समझना चाहिये जो धर्मात्मा है, ऊँच हो चाहे नीच हो, चाहे वह किसी भी जाति का हो इस बात का तो कुछ भी ख़याल नहीं होना चाहिये। ऐसा ही स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी इस बात पर ज़ोर देते हुए लिखा है कि धर्म धारण करने से तो पशु भी उत्तम देव हो जाता है, चांडाल

भी देवों का देव अर्थात् इन्द्र बन जाता है तब जाति का क्या घमंड।

आराधना कथाकोष में सुकुमाल की कथा में लिखा है कि चम्पापुरी में किसी चांडाल के यहां एक लड़की जन्म से ही अन्धी थी, शरीर से उसके महा दुर्गंध आया करती थी, माता पिता को उसकी दुर्गंध सहन न हुई, इस वास्ते उन्होंने उसको एक पेड़ के नीचे डाल दी, ज्यों त्यों बेचारी गंदगी में पड़ी पलती रही, एक समय एक आचार्य और मुनि वहां आ निकले, आचार्य महाराज ने उस लड़की की यह दुर्दशा देखकर उसको सम्बोधने के वास्ते मुनि महाराज को उसके पास भेजा, मुनि महाराज के उपदेश से उसने सम्यक्त्व और श्रावक के पांचों अणुव्रत ग्रहण किये, अब तुम ही विचारो कि उस अंधी, मैली कुचैली महा दुर्गंधा चांडाल की लड़की के पास जाकर जब श्री मुनि महाराज को ही कुछ हिचकिचाहट नहीं हुई तब हमारे जैसे मामूली आदमियों को तो भंगी चमार को धर्म उपदेश देने में और धर्म ग्रहण कराने में तो कुछ भी हिचकचाहट नहीं होनी चाहिये, पर होती ज़रूर है, क्योंकि हमको खुद ही धर्म की सच्ची लग्न नहीं है, हां अपनी ऊँची जाति का और अपने ऊँचे कुल का घमंड ज़रूर है जो महा अधर्म और पाप का मूल है।

इस कथा को पढ़कर हमारी बहनों को सोचना चाहिये कि पेड़ के नीचे फेंकी हुई जिस अन्धी चांडाल की लड़की ने सच्चा श्रद्धान, सच्चा ज्ञान और सच्चा आचरण अर्थात्, पंच अणुव्रत ग्रहण किये वह ऊँची है या हम जिनको न सच्चा ज्ञान है न सच्चा श्रद्धान और न कोई व्रत या आचरण, सच तो यह है कि अगर हममें कुछ भी धर्म

का भाव ही तो हमको तो इस चांडाल की लड़की का नाम सुनते ही माथा टेककर उसकी वंदना करनी चाहिये और शर्माना चाहिये कि हम उस जैसे भी नहीं हैं, तब घमंड किस बात का करें।

हमारी बहुत सी बहनें अपनी अन्तर आत्मा को विषय कषाय के मैल से साफ़ करके शुद्ध और पवित्र करने की जगह अपने चूल्हे चौके को लीप पोतकर साफ़ शुद्ध रखने को अधिक धर्म समझती हैं, कोई गैर जाति का आदमी अगर उनके चौके की धरती को छू दे तो उनकी सारी रसोई भ्रष्ट हो जाती है, ऐसी भ्रष्ट रसोई खाने वाला उनकी समझ में सीधा नरक को जाता है, और जो चूल्हे चौके की सफ़ाई रखता है उसको बेखटके स्वर्ग मिलता है ऐसा उनका श्रद्धान होता है, चौके से बाहर लेजाकर रोटी खाने वाला तो उनकी निगाह में ऐसा महापाप करता है जिसके बराबर कोई दूसरा पाप ही नहीं हो सकता है, ऐसी बहनों को ज़रा सोचना चाहिये कि चौका साफ़ सुथरा रखने से चौके की धरती तो ज़रूर साफ़ रहैगी पर रसोई करने वाली या खाने वाली की अन्दर की आत्मा तो साफ़ नहीं होगी, वह तो राग द्वेष को दूर करने और विषय कषायों को दबाने से ही साफ़ होगी और अन्दर की आत्मा के साफ़ हुये बिदून पुन्य की प्राप्ति नहीं होगी और पुन्य की प्राप्ति हुये बिदून शुभ गति नहीं होगी, तब चूल्हे चौके की सफ़ाई को धर्म से क्या मतलब, धर्म तो भावों की शुद्धि का नाम है, जिसका चौके की सफ़ाई से कुछ भी संबंध नहीं।

इस चांडाल की कन्या की कथा पर ही विचार कर देखो कि मुनि महाराज के उपदेश से सम्यक् श्रद्धान और

पांचों अणुव्रत ग्रहण कर लेने पर भी जाति तो उसकी चांडाल ही रही, दुर्गंध भी उसमें से दूर नहीं हुई, कपड़े भी उसके वह ही महा अपवित्र ही रहे, देह भी उसकी ज्यों की त्यों मैली ही रही, किसी ने धो पूंछकर साफ़ नहीं करदी, रसोई भी उसके वास्ते शुद्ध चौका लगाकर किसी ब्राह्मण ब्राह्मणी ने नहीं बनाई, उस बेचारी ने तो तब भी उस गंदे स्थान पर बैठे हुये ही दिन बिताये, हां बाहर सारी अपवित्रता रहते हुये भी अपनी अन्तर आत्मा को शुद्ध करने में वह ज़रूर लग गई, अपने भावों की सिंभाल उसने ज़रूर करनी शुरू करदी, भावों की शुद्धि में उसने कसर नहीं रखी, तब ही तो अपना अनन्त सुधार कर और स्त्री पर्याय छेदकर अन्त में बहुत ऊँचे स्वर्ग में विराज रही है और इन्द्र हुई है, इससे तुमको शिक्षा लेनी चाहिये और ख़ूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि चौके चूल्हे की शुद्धि से आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती है और न अगंत ही सुधर सकता है। चौका चूल्हा साफ़ हो या नहीं जिसका हृदय शुद्ध है। उस ही की आत्मा शुद्ध होकर अगंत सुधरता है, इस कारण अपनी ऊँची जाति का घमंड छोड़ो और चूल्हे चौके की सफ़ाई चाहे जितनी रक्खो पर इसको धर्म मत समझो, बाहर की इस सफ़ाई को धर्म समझने से तो रत्न के धोखे में कांच के टूटे फूटे टुकड़े ही हाथ आवेंगे।

असल धर्म तो शुभ भावनाओं के रखने में ही हैं, वह शुभ भावनायें चार हैं (१) **मैत्री** (२) **प्रमोद** (३) **करुणा** (४) **माध्यस्थ**।

(१) मैत्री अर्थात् सब ही जीवों का भला चाहना, भला धर्म करने से होता है, जो पाप करता है उसका भला हो नहीं सकता, इस वास्ते कोई छोटा हो बड़ा हो,

नीच हो उँच हो, सब ही को धर्म में लगाना और धर्म का सच्चा स्वरूप बताना ज़रूरी है, इस कारण मेरी प्यारी बहनो जो कोई भी तुमसे मिले, नौकर हो, चाकर हो नायन हो, ब्राह्मणी हो, कहारी हो, पिसनहारी हो, मालन हो चाहे भंगन हो, सब ही को अपने पास बिठाकर प्यार के साथ उनको धर्म की महिमा सुनाओ, परिणामों को दुरुस्त रखना, भावों को शुद्ध करना, शील संतोष से रहना सिखाओ, टहल चाकरी में और मेहनत मज़दूरी में कोई ऐब नहीं है, ऐब है दूसरों का हक़ मारने में, चोरी जारी करने में, धोखा फ़रेब देने में, दुखी होने में, इतराने में, दूसरों को सुखी देखकर डाह करने में, अधिक लोभ करने में, लड़ने भिड़ने और क्लेश करने में, यह ही सब महा-पाप हैं जिनके करने से जीव दुर्गति में रुलता फिरता है. इनको छोड़ने से ही स्वर्गों का सुख मिलता है।

एक गरीब भंगन जो घर घर टट्टी साफ़ करती फिरती है, फटे पुराने कपड़े पहनती है और सब घरों से मांगे हुये झूठे टुकड़े कूड़ी के ढेर पर बैठकर खाती है पर तुम्हारे मुख से धर्म का सच्चा उपदेश सुनलेने से अपने परिणामों की सिंभाल पूरी तरह से रखने लग गई है तो वह तो ज़रूर ही स्वर्ग मिलने के कर्म बांधने लग गई है, इस प्रकार अगर तुमने दो चार को भी धर्म के मार्ग पर लगा दिया तोतुमको भी इसका उत्तम फल मिले बिदून नहीं रहैगा, जो दूसरों का भला चाहेगा उसका भला ज़रूर होगा, दूसरी भावना प्रमोद है उसका अर्थ यह है कि किसी के गुणों को सुनकर खुश होना. कोई विद्वान हो, धर्मात्मा हो, परोपकारी हो, उपदेशक हो प्रचारक हो, वह अपने नगर में आ जाय तो खाने पीने आदि से उसकी टहल करो।

तीसरी भावना करुणा है अर्थात् दुखिया को देखकर उस पर दया करना, कोई पापी हो या धर्मात्मा, ऊँच हो या नीच यहां तक कि चाहे कुत्ता बिल्ली ही हो, वह अगर दुखी है तो जितना अपने से हो सके उसका दुख दूर करना, किसी को कुछ दे देना दान नहीं है, जो कोई भी मांगने खड़ा हो जाय उसको देना भी दान नहीं है, दान होता है दया से, जिस दुखिया पर दया आवे उसको देना दान है। उसको भी अगर इस गरज़ से दिया जावे कि इससे मुझे पुन्य होगा या मेरा कोई संकट दूर होगा तो वह भी दान नहीं है, दान तो तब ही है जो किसी को दुखी देखकर दया आने पर उसका दुख दूर करने के वास्ते दिया जावे, अपना कुछ भी फ़ायदा उसमें न सोचा जावे, देने के सिवाय दूसरे तौर पर भी दुखियाओं की बहुत कुछ सहायता की जा सकती है, किसी भंगी चमार को कोई न तो कुये से पानी ही भरने देता हो और न पानी ही पिलाता हो तो ऐसी हालत देखकर दया आने पर उसको पानी पिला देना बड़ा भारी धर्म है, किसी भंगी चमार का कोई छोटा सा बालक सड़क में बैठा हो, उधर से घोड़ा या बैल दौड़ा आ रहा हो तो तुरन्त उस बालक को गोद में उठा कर बचा लेना बड़ा भारी धर्म है, ऐसी हालत में भी अगर कोई स्त्री अपवित्र हो जाने के भय से उसको न बचावे तो समझ लो कि उस कठोर हृदय के अन्दर रत्ती भर भी धर्म नहीं है। हां अपनी ऊँची ज़ात होने का घमंड और साफ़ सुथरी रहने का शौक ज़रूर है जिससे पाप कर्म बंधने के सिवाय और कुछ नहीं मिल सकता है।

चौथी भावना माध्यस्त है, अर्थात् शेर भेड़िया और कुत्ता बिल्ली जैसे महा पापी जीव जो किसी तरह भी जीव

हिंसा नहीं छोड़ सकते हैं, उनका भी बुरा नहीं मनाना, जिनपर अपना बस नहीं चलता उनका बुरा मनाकर अपने परिणाम क्यों बिगाड़ना, जिससे पाप बंध होने के सिवाय और कुछ भी कारज सिद्ध नहीं होता है, इस प्रकार यह चारों ही भावना मन में रखनी चाहियें, इसको कभी भी नहीं भुलाना चाहिये।

दूसरा अध्याय—व्रती श्रावक

बहनो! पहले अध्याय में हमने अव्रती सम्यक् दृष्टि का कथन किया है, जिसको सच्चा श्रद्धान तो हो गया है परन्तु जिसने अभी तक कोई भी व्रत ग्रहण नहीं किया है, इस ही वास्ते अव्रती कहलाता है, सच्चा श्रद्धान होने पर नरक और तिर्यंच गति, स्त्री पर्याय, नीच गोत्र, नीच कुल आदि खोटे कर्मों का बंधना बंद हो जाता है ऐसा जो कथन शास्त्रों में किया है वह सब अव्रती सम्यक् दृष्टि के वास्ते ही है, व्रत ग्रहण करने पर तो अन्य भी अनेक पाप कर्मों का बंधना बंद हो जाता है, इस वास्ते व्रतों का स्वरूप भी अच्छी तरह समझ लेना ज़रूरी है।

संसार के जीव जो कुछ भी पाप करते हैं उन सब के पांच भेद हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, काम भोग और परिग्रह अर्थात संसार का मोह। इन पापों को छोड़ना ही व्रत है हिंसा का त्याग, झूठ का त्याग, चोरी का त्याग, काम भोग का त्याग, मोह का त्याग, यह पांच व्रत हैं, मुनि महाराज इन पांचों पापों को बिलकुल त्याग कर पांचों व्रतों को पूर्ण रूप से पालते हैं, इस ही वास्ते उनके व्रत महाव्रत

कहलाते हैं, परन्तु गृहस्थी पूर्ण रूप से इन पांचों पापों का त्याग नहीं कर सकता है, इस ही वास्ते व्रत भी पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं कर सकता है, थोड़ा ही त्याग हो सकता है और व्रत भी थोड़े २ ही पाल सकता है, इस ही वास्ते उसके व्रत देशव्रत वा अनुव्रत कहलाते हैं और वह अनुव्रती या देश व्रती श्रावक कहलाता है।

श्रावक के ग्यारह दर्जे हैं, जिनमें पहला दर्जा तो अव्रती सम्यग्दृष्टि का है, बाकी दस दर्जे अनुव्रती श्रावक के होते हैं, जिनमें सब से आखरी दर्जा क्षुल्लक और ऐलक का है, वह भी श्रावक ही कहलाते हैं, उनसे ऊपर मुनि होते हैं जो लिंगोटी तक भी नहीं रखते हैं और बस्ती से दूर जंगल में ही रहते हैं, श्रावक के ग्यारह दर्जे ग्यारह प्रतिमा कहलाते हैं, उनमें से पहली प्रतिमा अर्थात अव्रती सम्यक्ती का वर्णन तो पहले अध्याय में हो चुका, अब दूसरी प्रतिमा अर्थात् व्रती श्रावक का कथन करते हैं, जिसके पांच अनुव्रत और सात शील व्रत अर्थात अनुव्रतों को बढ़ाने वाले व्रत, इस प्रकार कुल बारह व्रत होते हैं।

(१) हिंसा न करना—संसारी जीव दो कार के हैं, एक स्थावर और दूसरे त्रस, बनस्पति और जलकाय, वायुकाय आदि एकेन्द्रिय जीव जो अपनी इच्छा से चल फिर नहीं सकते हैं स्थावर हैं और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय जीव जो अपनी इच्छा से चल फिर सकते हैं त्रस हैं, गृहस्थी स्थावर जीवों की हिंसा से बच नहीं सकता है, इस वास्ते उसको स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग नहीं होता है हां बेमतलब उन की हिंसा भी नहीं करता है, त्रस का भी सिर्फ संकल्पी हिंसा का ही त्याग होता है, सर्वथा नहीं, इरादा करके

वह त्रस की हिंसा नहीं करैगा, न मन में उसकी हिंसा का भाव लावेगा, न वचन से कहैगा, न आप करैगा, न किसी दूसरे को करने को कहैगा, न करते को अच्छा कहेगा, गृहस्थी होने के कारण आरम्भ वह छोड़ नहीं सकता है, इस वास्ते गृहस्थी के कार्य करते हुए आपसे आप जो जीव मरते हैं उनकी हिंसा का त्याग उससे नहीं हो सकता है।

अहिंसा अणुव्रत में इतनी बात जान लेनी बहुत ज़रूरी है कि जान से मार डालने का ही नाम हिंसा नहीं है बल्कि दुख देना भी हिंसा है, नौकरों चाकरों से उनकी ताक़त से ज़्यादा काम लेना, ज़रा भी आराम न करने देना, बीमार होने पर भी काम में जोते रखना, पेट भर भोजन न देना, इस ही प्रकार और भी जो कोई अपने आसरे पड़ा हो उसको दुखी रखना, जानवरों के साथ भी ऐसा ही निर्दयता का व्यवहार रखना, यह सब बातें अहिंसा अनुव्रत को भ्रष्ट करने वाली हैं, बनस्पति आदि एकेन्द्रिय स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग इस दर्जे में बिल्कुल भी नहीं होता है, इस वास्ते इस दर्जे वाला सब ही प्रकार की साग सब्ज़ी खाता है किसी भी सब्ज़ी का त्याग उसको नहीं होता है।

हमारी जो बहनें इस व्रत प्रतिमा के धारण करने से पहले ही, यहां तक कि सम्यक् दर्शन प्राप्त कर पहली प्रतिमा पाने से पहले ही दूसरों की देखादेखी थोड़ी बहुती साग सब्ज़ियों का त्याग कर देती हैं, वे धर्म का ढोंग बनाने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर पाती हैं, चलते फिरते त्रस जीवों पर, और अपने जैसे मनुष्यों पर दया करने के भाव तो अभी तक उनमें पैदा हुए नहीं तब बनस्पति पर दया करने के भाव तो उनमें कैसे हो सकते

हैं, इस ही वास्ते बेखटके अपने हाथ से ढेरों साग सब्ज़ी काट काट कर सुखाती हैं और ज़रा भी दरका नहीं खाती हैं, काम तो सब पैड़ी पर पैड़ी चढ़ने से ही बना करता है, छलांग मार कर कोठे पर चढ़ने की कोशिश करने से तो हाथ पैर तुड़ाने के सिवाय और कुछ भी नहीं हुआ करता है।

सब से पहली दर्शन प्रतिमा धारण करने के बाद ब्रत प्रतिमा धारण करने से पहले त्रसहिंसा के त्याग का अभ्यास के तौर पर मांस शराब शहद और गूलर आदि ऐसे फलों के खाने से परहेज़ किया जाता है जिनमें से तोड़ने पर उड़ते हुये जानवर निकलते हैं, लेकिन अभी बहुत मोटे रूप ही यह सब त्याग होते हैं, मांस के त्याग में कस्तूरी, और मोती आदि पदार्थों का दवा में डालने का और घुणे अनाज के खाने का इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातों का त्याग नहीं होता है, इस ही तरह शराब का भी नशे के वास्ते पीने का त्याग होता है, दवा में एक दो बूंद पड़ने का त्याग नहीं होता है, परन्तु स्त्रियां पहले दर्जे से भी पहले, धर्म का स्वरूप जानने पहचानने और श्रद्धान ठीक करने से भी पहले देखादेखी अंग्रेज़ी दवा का भी त्याग कर देती हैं, हिन्दुस्तानी दवा भी छने पानी के बिदून बनाई गई हो उसको भी ग्रहण नहीं करती हैं, बाज़ार की मिठाई आदि भी खानी छोड़ देती हैं, मशीन का आटा, कहार का पानी और भी ऐसी ही अनेक चीज़ें त्याग देती हैं, पर दया धर्म को न तो जानती ही हैं और न जानने की इच्छा ही रखती हैं कोई समझाये तो समझना भी नहीं चाहती हैं, अभी तक तो वे दया धर्म को धारण करने की शक्ति ही नहीं रखती हैं इस कारण उनके यह सब त्याग बच्चों के खेल के समान

हो होते हैं, जो बड़ों की देखा देखी उनकी सब बातों की नक़ल करने लग जाया करते हैं।

(२) **सच बोलना**—अर्थात मोटे तौर पर झूठ बोलने का त्याग, धोखा, फ़रेब, मायाचार, जालसाज़ी करना, बहकाना, दिल दुखा देने वाले कठोर बचन बोलना, बेहूदा निर्लज्ज और बेशर्मी के बोल बोलना, किसी की गुप्त बात प्रगट कर देना, यह सब झूठ बचन में शामिल हैं, इधर की उधर लगाना, चुग़ली खाना, कोई सच्ची भी ऐसी बात कहना जिससे झगड़ा फ़िसाद उठता हो या हिंसा होती हो, यह सब झूठ या बेजा बोल में शामिल हैं, शायद ही कोई बहन इस व्रत को धारण करने का साहस करे जिससे अन्तर आत्मा पवित्र होती है हां मशीन का आटा और बाज़ार की मिठाई त्यागने को सब तय्यार हो जाती हैं क्योंकि इसमें भावों की शुद्धि नहीं करनी पड़ती है जो अत्यन्त ही कठिन है, पर याद रखो, चाहे कोई कितना ही कष्ट उठाले, जब तक भाव शुद्ध नहीं होंगे तब तक बाहर की शुद्धि से कुछ भी लाभ नहीं होगा।

(३) **अचौर्य व्रत**—अर्थात चोरी नहीं करना, न ज़बरदस्ती किसी की कोई चीज़ लेना, न किसी का हक़ मारना।

(४) **शील व्रत**—वेद कषाय के कारण पुरुष को स्त्रीभोग की और स्त्री को पुरुष भोग की इच्छा होती है, मुनि इस इच्छा का सर्वथा त्याग करते हैं, परन्तु गृहस्थी से ऐसा नहीं हो सकता है इस वास्ते उनको दुनिया भर के स्त्री पुरुषों की तरफ़ मन भटकते फिरने से बचने के लिये पशुओं का सा जीवन न बिताकर जोड़ी बनाकर रहने का नियम बांध दिया गया है, जिससे पुरुष अपनी एक

व्याहता स्त्री से और स्त्री अपने व्याहता पति से बंध जाय इसके सिवाय इधर उधर मन न भटकाये, परन्तु पुरुषों ने इसमें बड़ी भारी अंधा धुंदी मचाई है, अव्वल तो पुरुष कई कई स्त्रियां व्याह कर स्त्री जाति पर बड़ा भारी ज़ुल्म और अन्याय करता है इसके सिवाय वह परस्त्री सेवन और वेश्यागमन भी नहीं छोड़ता है और तमाशा यह है कि पुरुष की तरफ़ से यह सब अन्याय होने हुये भी वह स्त्री जाति को ही बदनाम करता है, यहां तक कि शास्त्रों में भी स्त्री चरित्र के गीत लिखकर खुल्लमखुल्ला उनकी बुराई का ढोल पीटा है।

पुरुष की इस वेहयाई और ज़बरदस्ती की यहीं तक ही हद नहीं है वह तो स्त्री के मरते ही उस ही दम दूसरा व्याह कराने की फ़िकर में लग जाता है और ज़रा नहीं लजाता है, इससे भी भारी ज़ुल्म वह यह करता है कि साठ बरस का बुड्ढा होने पर भी दस बरस की छोटी सी कन्या व्याह लाता है जो बिल्कुल ही उसकी पोती के बराबर होती है, यह सब ज़ुल्म स्त्रियां अपनी आंखों देखती हैं और ज़रा भी टस से मस नहीं करती हैं, यहां तक कि बुड्ढे के व्याह के गीत गाने में भी नहीं लजाती हैं, भाजी भी उसके व्याह की मज़े से खाती हैं, स्त्रियां अगर ढेठ करें तो क्यों यह ज़ुल्म क़ायम रहै, कम से कम स्त्रियां यह तो कर ही सकती हैं कि बुड्ढे के व्याह में शामिल न हों, न उसकी भाजी लें और न आगे को उसको अपनी बिरादरी में समझें, सदा के लिये उसको बिल्कुल ही अलग कर दें, भंगी चमार के घर का खावें पर उस बुड्ढे क़साई के हाथ का पानी भी न पीवें जो एक छोटी सी लड़की का जन्म अकारथ करने के वास्ते उसको व्याह कर लाया है,

फिर देखें किस तरह यह बुड्ढे पापी छोटी छोटी लड़कियों को ब्याह लाने का ढेठ करते हैं, अकेले उस बुड्ढे के साथ ही ऐसा व्यवहार करें बल्कि बेटी के बाप या भाई को भी जिसने अपनी छोटी सी कन्या को बुड्ढे क़साई को ब्याहा है अलग छोड़ दें।

अन्य भी अनेक प्रकार के उपाय हो सकते हैं जिनसे छोटी २ कन्याओं के साथ बुड्ढों का ब्याह न होने पावे वह सब ही उपाय करने चाहियें गाय को क़साई की छुरी से बचाने में जितना पुन्य है उससे अनन्त गुणा पुन्य कन्या को बुड्ढे के साथ ब्याहे जाने से बचाने में है, अगर बुड्ढा यह कहे कि विना कराये मुझसे रहा नहीं जाता है इस वास्ते मेरे ऊपर क्यों ऐसा जुल्म किया है, तो उसको समझाना चाहिये कि वह अपनी ही उमर की कोई बुड्ढी रांड ब्याह लावे पर किसी छोटी सी कन्या पर जुल्म न करे, कोई भी पुरुष अपने से दस बरस से ज़्यादा छोटी कन्या से ब्याह न करने पावे। अगर ऐसा बन्दोबस्त हो जाय तो जैनियों के ऊपर से बड़ा भारी कलंक दूर हो जाय, और वे सचमुच ऊँची जाति वाले हो जायें। पर यह तब ही हो सकता है जब हमारी बहनों के हृदय में दिखावे का नहीं बल्कि सच्चा दया भाव हो और उस दया भाव से प्रेरित होकर बेचारी अबोध कन्याओं की जान बचाने के वास्ते सब कुछ सहने को तैयार हों।

जिस जाति में अपनी ही कन्याओं पर ऐसे जुल्म होते हों वह उच्च गोत्री और अहिंसा धर्मी होने का दावा करे और साग सब्ज़ी के त्याग का स्वांग भरे यह पंचमकाल की महिमा नहीं तो और क्या है इससे भी ज़्यादा तमाशे की बात यह है कि बड़ी बड़ी धर्मात्मा स्त्रियां भी जिनको

सर्वथा ही साग सब्ज़ी का त्याग है, जो अपने ही हाथ का पिसा आटा खाती हैं अपने ही हाथ से कुवे से पानी लाकर पीती हैं, जिनके चौके पर किसी की परछाईं भी नहीं पड़ सकती है, जो रात दिन टट्टी पेशाब जाने पर बराबर नहाती रहती हैं, वे भी अपने किसी भाई भतीजे वा अन्य किसी रिश्तेदार की स्त्री के मर जाने पर वह चाहे कितनी ही ज़्यादा उमर का हो किसी कन्या की तलाश में लग जाती हैं, सौ सौ बातें बनाती हैं और किसी न किसी कन्या वाले को फंसा ही लेती हैं। ऐसी ही धर्मात्मा स्त्रियां बुगला भगत कहलाती हैं और धर्म को लजाती हैं।

(५) परिग्रह परिमाण—अर्थात संसार के मोह की हद बांधना, मोह दो प्रकार का है, अन्तरंग और बहिरंग मिथ्यात्व और कषाय अन्तरंग परिग्रह हैं और स्त्री पुत्र और धन धान्य आदि बाह्य परिग्रह हैं, कषाय १३ प्रकार की हैं क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति, हास्य, शोक भय, जुगुप्सा और स्त्री पुरुष नपुंसक वेद, क्रोध अर्थात गुस्सा करना, मान अर्थात् अपने को ऊँचा समझना, माया अर्थात् धोखा फ़रेब और बनावट बनाना, लोभ अर्थात् इच्छा, रति अर्थात् प्रीति, अरति अर्थात् नफ़रत हास्य अर्थात खुश होना, शोक अर्थात् रंज करना, भय अर्थात डरना, जुगुप्सा अर्थात् ग्लानि करना, स्त्री वेद अर्थात् पुरुष की इच्छा होना, पुरुष वेद अर्थात् स्त्री की इच्छा होना, नपुंसक वेद अर्थात् हीजड़े को स्त्री पुरुष दोनों की इच्छा होना।

मुनि महाराज तो अन्दर बाहर सब ही प्रकार की परिग्रह को त्यागकर यहां तक कि देह से भी ममत्व

छोड़कर बिल्कुल ही परिग्रह रहित हो जाते हैं, परन्तु गृहस्थी सर्वथा त्याग नहीं कर सकता है, इस वास्ते वह अंतरंग परिग्रह अर्थात कषायों को दबाकर मंद रखता है, अधिक उभरने नहीं देता है और बाहर परिग्रहों की हद बांधता है, अपना ग्रहस्थ चलाने के लिये इतना सामान रखूंगा, इससे ज़्यादा नहीं रखूंगा, इस प्रकार अपनी कषायों को मंद रखता हुवा बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करता है, ठाठ बाट किसी प्रकार का भी नहीं रखता है, यद्यपि परिग्रह परिमाण कर गृहस्थियों के लिये ऐसा सादा जीवन व्यतीत करना बहुत ही कठिन है, वास्तव में तो कुछ अंशों में गृह त्यागी ही बनना है, परन्तु ऐसा त्यागी हुए बिदून अनुव्रती नहीं हो सकता है इस वास्ते देशव्रती को यह व्रत भी लेना ही पड़ता है।

ऊपर कहे हुये पांचों अनुव्रतों के धारण करने के बाद सात प्रकार के शील व्रत ग्रहण किये जाते हैं, जिनसे अनुव्रतों में तरक्क़ी होती है, इनमें से दिग्व्रत, अनर्थ दंड व्रत और भोगोपभोग परिमाण व्रत यह तीन गुण व्रत कहलाते हैं क्योंकि इनसे अणुव्रत बढ़ते हैं और देशावकाशिक, सामायिक प्रोषधोपवास और वैय्यावृत्य यह चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं क्योंकि इनसे मुनिधर्म का अभ्यास होता है इनका स्वरूप इस प्रकार है।

(१) **दिग्व्रत**—अर्थात सब तरफ़ क्षेत्र की हद बांध कर उमर भर तक उसके बाहर न जाना और न किसी प्रकार का व्यवहार ही रखना।

(२) **अनर्थ दण्ड व्रत** अर्थात बांधी हुई हद के भीतर भी बेमतलब के पाप कार्यों से बचना, जैसे जानवरों को क्लेश पहुँचाने वाली कोई सलाह न देना, किसी को किसी

प्रकार के बनज व्यापार की सलाह न देना, हिंसा उत्पन्न कर देने वाली कोई बात न कहना, ऐसी बातों की सलाह न देना जिसमें अधिक आरम्भ होता हो, किसी को ऐसा हथियार या औज़ार न देना जिसमें हिंसा हो सकती हो, किसी का बुरा चिंतवन न करना, ऐसी कथाओं का न सुनना जिनसे राग द्वेष आदि कोई विकार पैदा होता हो, बेमतलब स्थावर जीवों की हिंसा भी न करना।

(३) **भोगोपभोग परिमाण व्रत** अर्थात राग द्वेष को घटाने और इन्द्रियों को बस में करने के वास्ते नित्य जितना भी हो सके ऐसे विषय भोगों का त्याग करना या हद बांधना जिनकी तरफ़ मन चलता है या जिनकी ज़रूरत है, जैसे स्वाद भोजन, सवारी, मुलायम बिस्तर, नहाना धोना, इतर फुलेल लगाना, पान चबाना सुन्दर वस्त्र वा ज़ेवर पहनना, कामभोग करना, गाना बजाना, तमाशा देखना आदि इस प्रकार के सब ही विषयों का त्याग कुछ कुछ समय के वास्ते करते रहना, इस ही के साथ त्रस हिंसा से बचने के वास्ते मांस और शहद का सर्वथा त्याग करना इनके अलावा जिन वस्तुओं के सेवन करने से अधिक जीवों का घात होता है जैसे अद्रक मूली और गाजर आदि कंदमूल मक्खन और फूलों का भी परिमाण करना, कंद मूल में एकेन्द्रिय स्थावर अनन्त जीव होते हैं, फूलों पर त्रस जीव चिपक कर मर जाते हैं।

अब यहां विचारने की बात है कि परिग्रह का त्याग करते २ इस दर्जे पहुँच कर बड़ा भारी त्यागी होने पर भी, नाम मात्र का गृहस्थी रह जाने पर भी इस भोगोप-भोग परिमाण व्रत में विषय भोगों के त्याग का अभ्यास कराते हुये, बनस्पतियों में एक तो फूलों के त्याग का

परिमाण करना बताया है जिनपर त्रस जीव चिपक जाते हैं और दूसरे कंदमूल का जिनमें अनन्त निगोदिया जीव होते हैं। बाक़ी की साग सब्ज़ियों के त्याग का विधान इस दर्जे में भी नहीं किया गया है यह दर्जा सर्व त्याग का नहीं है बल्कि थोड़ा २ परिमाण करने का है परन्तु बाक़ी की साग सब्ज़ियों के वास्ते तो थोड़ा २ परिमाण करने का भी विधान यहां नहीं किया है, इससे साफ़ साबित है कि इस दर्जे में पहुँच कर भी कोई कंद मूल के सिवाय दूसरी साग सब्ज़ियों के त्याग का अधिकारी नहीं होता है, अगर कोई त्याग करता है तो उसका वह त्याग असली नहीं हो सकता है दिखावा मात्र ही होता है, कंद मूल का त्याग भी इस दर्जे में परिमाण रूप अर्थात अभ्यास रूप ही होता है इस वास्ते इस दर्जे में पहुँचने से पहले कंद मूल का त्याग भी दिखावे का ही हो सकता है।

तीन गुणव्रतों का कथन करके अब चार शिक्षा व्रतों को कथन किया जाता है।

(४) देश व्रत—दिग्व्रत में जो हद क़ायम की थी उसके अन्दर भी रोज़ रोज़ हद बांधकर उसके बाहर नहीं जाना और न कोई व्यापार करना।

(५) सामायिक—अर्थात मन बचन काय और कृत कारित अनुमोदना से कुछ समय के वास्ते ध्यान को दुनिया के धंधों से बिलकुल ही हटाकर एकान्त में बैठकर आत्म-ध्यान करना, या धर्म ध्यान में लगना सामयिक के समय मुनियों की तरह सर्दी गर्मी डांस मच्छर आदि परीसहों को और सब प्रकार के उपसर्गों को सहना।

(६) **प्रोषधोपवास व्रत**—अर्थात अष्टमी और चौदश को सर्व प्रकार का आहार त्यागकर, नहाना, धोना, सिंगार करना, सुर्मा लगाना त्यागकर, गृहस्थ का सब काम काज छोड़कर, संसार के सब ही धंधों की तरफ से ख़याल को हटाकर धर्म साधन में ही लगा रहना, ज्ञान ध्यान में ही सारा समय बिताना, अगर सारा दिन धर्म साधन में न लगा सके तो जितना भी समय लगा सके उतने ही समय तक का उपवास करना, हमारी बहनों को उपवास करने का भी बहुत शौक होता है परन्तु बहुत करके वे भूखा रहने को ही उपवास समझती हैं, नहाती भी हैं, सिंगार भी ख़ूब करती हैं, और दुनिया भर के क़िस्सों में भी ख़ूब लगी रहती में, एक दूसरी को बुराई भी ख़ूब करती रहती हैं, यूंही उपवास का दिन बिताकर व्रत खोलने पर ख़ूब अच्छे २ भोजन खाती हैं और अपने को बहुत बड़ी पुन्यवान समझने लग जाती हैं, असल में देखो तो धर्म का लेश भी उनमें नहीं होता है, क्यों अभी तक न तो धर्म का स्वरूप ही जाना है और न श्रद्धान ही ठीक किया है और न पहले अणुव्रत ग्रहण करके अपने को उपवास करने के योग्य ही बनाया है।

(७) किसी प्रकार के लाभ का ख़याल किए बदून मुनियों को दान देना और टहल करना।

तीसरा अध्याय—श्रावक की ग्यारह प्रतिमा

पहली और दूसरी प्रतिमाओं का कथन करके अब बाक़ी की सब प्रतिमाओं का कथन किया जाता है।

(३) **सामयिक प्रतिमा**—दूसरी प्रतिमा वाला भी अपने शिक्षाव्रतों में सामायिक करता है वह सामायिक उसकी

अभ्यास रूप ही होती है नियम पूर्वक नित्य सुबह शाम और दोपहर को ठीक २ सामायिक तीसरी प्रतिमा में ही होती है।

(४) प्रोषध प्रतिमा—दूसरी प्रतिमा वाला भी उपवास करता है परन्तु यह भी अभ्यास मात्र ही होता है नियमानुसार ३६ घंटे का पूरा उपवास इस चौथी प्रतिमा में ही होता है।

(५) सचित त्याग प्रतिमा—अर्थात साग सब्ज़ी का सर्वथा त्याग करना, यहां यह बात अच्छी तरह विचार करने की है कि शास्त्रों में साग सब्ज़ी का त्याग इतने ऊंचे चढ़ जाने के बाद ही बताया है, त्याग करते करते इतना त्यागी और धर्म प्रेमी होने के बाद ही परिणाम साग सब्ज़ी के त्याग के योग्य हो सकते हैं, इससे पहले नहीं, दूसरी प्रतिमा में पांचों अणुव्रत और दो गुण व्रत ग्रहण करने के बाद जब आठवां भोगोपभोग परिमाण व्रत लिया जाता है तब फूल और कंदमूल के सेवन करने का परिमाण करना शास्त्रों में बताया है, परिमाण करने का अर्थ यह है कि एकदम सब ही कंद मूल का त्याग नहीं करना बल्कि समय समय के लिये थोड़ी २ हद बांधना, भोगोपभोग परिमाण व्रत धारण करने के बाद आहिस्ता २ जब सब ही कंद मूलों का त्याग हो जाय तब उसके बाद ही अन्य साग सब्ज़ियों के त्याग का अभ्यास शुरू किया जाता है और अभ्यास करते २ पांचवीं प्रतिमा में सब ही साग सब्ज़ियों का त्याग हो जाता है। परन्तु हमारी बहनें तो पांचों अणुव्रत ग्रहण करने से पहले ही यहां तक कि पहिली प्रतिमा धारण करने से पहले ही साग सब्ज़ी का त्याग शुरू कर देती हैं जो बाहर के दिखावे के सिवाय और कुछ भी नहीं होता है।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा—इस छटी प्रतिमा में रात के समय सब ही प्रकार के खाने पीने का त्याग

हो जाता है, इससे पहली प्रतिमा में अर्थात पांचवी प्रतिमा में रात्रि भोजन त्याग का अभ्यास शुरू हो जाता है हमारी जो बहनें दस दर्जे तक पहुँचने से पहले ही रात्रिभोजन का त्याग कर बैठती हैं उनको ही शाम को दिया जलाना रोककर ज़बरदस्ती रात हो जाने को रोकना पड़ता है।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—इस प्रतिमा में स्त्री पुरुष घर में रहते हुए भी आपस में भोग करने का त्याग कर देते हैं।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा—गृहस्थी का सब ही प्रकार का कारज करना छोड़ देना।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—रुपया पैसा आदि सब ही परिग्रह छोड़कर त्यागी हो जाना।

(१०) अनुमति त्याग—गृहस्थ संबंधी किसी प्रकार की सलाह भी किसी को न देना।

(११) उद्दिष्ट त्याग—ऐलक वा क्षुल्लक होकर अपने निमित्त बना भोजन नहीं लेना।

चौथा अध्याय—गृहस्थी चलाना

परिणामों में शान्ति का रहना, कषायों का मंद होना विषय भोगों में अधिक लिप्त न होना, मिल जुल कर रहना एक दूसरे की सहायता करना, सुख से जीवन व्यतीत हो जाय ऐसा प्रबन्ध रखना, बाल बच्चों को पाल पोसकर उत्तम गृहस्थी बनाना, सब की तन्दरुस्ती का ख़्याल रखना यह गृहस्थ का मुख्य धर्म है, गृहस्थ की गृहस्थी सब स्त्री के ही हाथ में रहती है, पुरुष तो पैसा कमाने वाली एक

मशीन है, उसकी लाई हुई कमाई को उत्तम रीति से खर्च करना, घर का प्रबंध रखना, बच्चों को पालना पोसना यह सब स्त्री के ही हाथ में रहता है, इस कारण स्त्री को बहुत ही चतुर दूरदर्शी, गृह प्रबंध में निपुण, बच्चों की पालना में होशियार, तन्दरुस्ती के नियमों से वाक़िफ, हंसमुख, मिलनसार, बीमारों की सेवा करने में मुस्तइद् और दयावान होना ज़रूरी है।

जितनी आमदनी हो उतना ही ख़र्च करना, उस ही में संतोष रखना, जो जो काम ज़रूरी हैं उन सब ही का ध्यान रखना, किस काम में कितना ख़र्च करना चाहिये, कौन सा काम ज़रूरी है, कौनसा ग़ैर ज़रूरी इसका पूरा पूरा ज्ञान होना, सब काम अपनी ही हैसियत के मुवाफ़िक़ करना दूसरों की रीस न करना, न दूसरों की बढ़ती को देखकर डाह करना, न दुखी होना, अपनी जो अवस्था है उस ही में ख़ुश रहना, सहन शील होना, किसी भी हालत में न घबराना, धीरज रखना, यह सब बातें सुख शान्ति रहने, आनन्द से जीवन व्यतीत होने और धर्म भाव ठीक रहने के वास्ते ज़रूरी हैं।

जो स्त्री अपनी हैसियत के अनुसार ख़र्च न रखकर दूसरों की रीस करके ऊंची बनने के वास्ते अधिक ख़र्च करती है उसके घर सुख शान्ति हर्गिज़ भी नहीं रह सकती है और न बड़ाई ही मिल सकती है। मसल मशहूर है कि जितनी चादर हो उतने ही पैर फैलाओ, छोटी चादर होने पर जो लम्बे पैर फैलायेगा, उसका सिर खुल जायगा, सिर ढकेगा तो पैर खुल जायेंगे, इस वास्ते छोटी चादर होने पर सुकड़ सिमट कर इस ही तरह पड़ना चाहिये जिसमें सिर और पैर दोनों ही ढक जायें, हैसियत से ज़्यादा ख़र्च करने में परिणाम भी पाप रूप रहते है, सुख शांति भी

क़ायम नहीं रहती, रात दिन सोच फ़िकर में ही बीतती है और सब ही काम बिगड़ते हैं, इस वास्ते गृहस्थी का सब से ज़रूरी काम किफ़ायत के साथ ख़र्च रखना और आमदनी का ख़याल रखना है, और यह सब स्त्रियों के ही हाथ में है, स्त्री सुघड़ हो तो थोड़े ही में आनन्द मना कर घर को स्वर्ग बना सकती हैं और मूर्ख हो तो सब कुछ होते हुये भी रंज और क्लेश फैलाकर अच्छे भले घर को भी नरक स्थान बना देती है।

स्त्रियों को गहने घड़वाने और रीति रिवाजों में हैसियत से ज़्यादा ख़र्च कर अपने को ऊंचा दिखाने की होड़ बहुत ही ज़्यादा होने लग गई है, जहां किसी के पास कोई नया गहना देखा, तुरन्त अपने वास्ते भी वैसा ही गहना बनवाने की भड़क पैदा हो जाती है, हमारी क्या हैसियत है, क्या क्या ज़रूरी काम सिर पर खड़े हैं, पैसा घर में है या नहीं है, उस गहने की कोई ज़रूरत भी इस समय है या नहीं है, इस सब बातों का कुछ भी ख़याल न कर एकदम गहना बनवाने की लौ लग जाती है, खाते, नहाते, उठते बैठते, सोते जागते, इस ही बात की रट लगी रहती है, नतीजा यह होता है कि हाथ में पैसा न होने पर भी उधार लेकर या दूकान वा अन्य व्यापार की पूंजी में से पैसा निकालकर गहना बनवा देना पड़ता है, जिससे या तो क़रज़ वाले का सूद चढ़ना शुरू हो जाता है या जमा कम हो जाने से दूकान और व्यापार की आमदनी कम होने लग जाती है जिससे गृहस्थ के सब ही कामों में ख़राबी पड़ जाती है।

बच्चों के जन्म सगाई ब्याह आदि कारजों में भी स्त्रियों को दूसरों की रीस करने की भड़क हुआ करती हैं, हम

किसी से कम क्यों रहैं ऐसी उत्कंठा उठ खड़ी होती है, दूसरी स्त्रियां भी भड़काती हैं बढ़ावा देती हैं, कमती करने से भारी बदनामी होने का डरावा भी दिखाती हैं जिससे कारज करने वाली की बुद्धि बेठिकाने होकर दो दिन की वाह २ हासिल करने की ही मन में ठन जाती है, फिर क्या था, बिल्कुल ही अपनी हैसियत का ख़याल दिल से निकालकर आंख बंद कर ख़ूब पैसे की होली मनाई जाती है, अन्त में कारज निमट जाने पर जो दशा होती है, दिन रात जो चिन्ता करनी पड़ती है वह सब ही को मालूम है, लिखने की कोई भी ज़रूरत नहीं है,

स्त्रियों को इन बातों की तरफ़ ध्यान देने की बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत है, जब तक घर का इन्तज़ाम ठीक नहीं होगा, जब तक किफ़ायत से ख़र्च करने का ध्यान नहीं होगा, अपनी हैसियत का ख़याल नहीं होगा, तब तक न तो हैसियत ही क़ायम रह सकती है और न परिणाम ही ठीक रह सकते हैं, इस वास्ते घर को स्वर्ग धाम बनाने के लिये सुख और शान्ति बनाये रखने के लिये शुभ परिणाम सब पुण्य बंध होते रहने के लिये सच्चा और असली आत्म धर्म सेवन करते रहने के लिये गृहस्थी को सब से मुक़द्दम अपने घर का उत्तम प्रबंध रखना बहुत ज़रूरी हैं, यह ही गृहस्थी का बड़ा धर्म है।

—सूरजभान